॥ अर्हम् ॥

श्रीसद्विजयधर्मसूरिभ्योनमः ।

※ उपोद्घात ※

इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि-आत्महित और परहित साधन करने वाले शुद्धचरित्रवान् महापुरुषों के जीवनचरित्र के अध्ययन से मनुष्यजाति को जितना लाभ हुआ है और हो सकता है, उतना किसी अन्य साधन से नहीं होसकता ।

जीवनचरित्र मोहान्धकार में पड़े हुए लोगों को ज्ञान प्रकाश में लाने वाली एक अपूर्व वस्तु है । जीवनचरित्र आन्तरिक सद्गुण रूप स्वच्छता और दुर्गणरूप मलीनता दिखाने वाला अद्भुत दर्पण है । संसार में जितने शिष्ट पुरुष हुए हैं, सबने अपने सामने किसी आदर्श पुरुष का जीवन चरित्र ही रख कर उन्नति के मार्ग में प्रवेश किया है। यह बात स्वाभाविक और अनिर्वार्य है । विना किसी आदर्श के मनुष्य कुछ कर नहीं सकता। मनुष्य का आचरण आदर्श के अनुसार ही होता है । ऐसे अवसर में महा पुरुषों की जीवनी सर्व साधारण मनुष्यों के चरित्र सुधारने में कहाँ तक उपयोगी होसकती है ? इस बात को सहृदय पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं ।

इस पुस्तक में वर्णित चरित्र नायकों के आचरण से मनुष्यमात्र असीम लाभ उठा सकते हैं । यह सब के मननयोग्य रहस्य है। मुख्य तथा जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि, श्रीविजयसेनसूरि तथा श्रीविजयदेवसूरि-इन तीन महात्माओं के पवित्र चरित्रों से यह ग्रंथ गुंफित है । ये महात्मा विक्रमीय सोलहवीं और सतरहवीं शताब्दियों में हुए हैं। बालपन में विरक्त होकर दीक्षा के उपरान्त हमारे तीनों चरित्र नायकों ने शासन उन्नति के लिये कितना घोर प्रयत्न किया था-उनका शासन

प्रेम कितना दृढ़ और प्रगाढ़ था—सम्राट् अकबर जैसे नरपालों को प्रति बोध करने में कितने साहस और उत्कर्ष का उन महानुभावों ने परिचय दिया था, पर उस यवनराज्यत्वकाल में स्वधर्मरक्षा के लिए वह लोग कैसे उद्यत थे यह सब बातें सूक्ष्मतया इस ग्रन्थ में निगदित हैं। सुतरां यह भी ज्ञात होगा कि-वे महानुभाव ऐसे धुरंधर आचार्य होने पर भी तप जप-सयम-त्याग वैराग्य में कैसे सुदृढ़ थे? । पुन इस पुस्तक के अवलोकन से ऐतिहासिक विषय के भी बहुत संदिग्ध रहस्यों का पता लग सकेगा।

इस पुस्तक को मैंने ' श्रीविजयप्रशस्ति ' नामक महाकाव्य के आधार पर निर्मित किया है। और कतिपय अन्य पुस्तकों से भी सहायता ली है। तिस पर भी यदि किसी अशुद्धि को कोई पाठक सप्रमाण सूचित करेंगे तो मैं द्वितीयावृत्ति में उसे सहर्ष सुधारने की चेष्टा करूंगा।

इस ग्रंथ के निर्माण करने में मेरे सुयोग्य ज्येष्ठ बन्धु, न्याय शास्त्र के धुरंधर विद्वान् महाराज श्रीवल्लभविजय जीने बहुत सहायता प्रदानकी है अतएव मैं आपका अनुगृहीत हूँ।

यद्यपि मेरी मातृभाषा गुजराती है, तथापि इस पुस्तक को मैंने हिन्दी में लिखने का साहस किया है। अत एव इसमें भाषा सबन्धी अशुद्धियों का बाहुल्य होना सम्भव है। आशा है कि पाठकवृन्द उन अशुद्धियों की ओर दृष्टिपात न करके पुस्तक के सारही को ग्रहण करेंगे।

कार्तिकी पूर्णिमा
वीर सम्वत् २४३६
ता० २४-११-१२

कर्त्ता

अर्हम्

श्रीमद्विजयधर्मसूरिभ्यो नमः

विजयप्रशस्तिसार

※ पहला प्रकरण ※

(विजयसेन सूरिका जन्म और 'कमा' शेठकी दीक्षा).

जिस समय मेदपाट (मेवाड) देश, कर्णाट-लाट—विराट—घन-घाट-सौराष्ट्र—महाराष्ट्र—गौड़-चौड़-चीन वत्स मत्स्य-कच्छ—काशी-कोशल—कुरु अंग-बंग-वंग और मरु आदि देशों में सबसे बड़ का प्रधान गिना जाता था, जिस समय उसकी भूमि रस पूर्ण थी, जिस समय उस देश के समस्त लोग ऋद्धि समृद्धि से कुबेरकी स्पर्द्धा कर रहे थे और जिस समय वहां के निवासी (रंक से लेकर राय पर्यन्त) नीति-धर्म का सम्यक्प्रकार से पालन कर रहे थे, उस समय, एकरोज आकाश में भ्रमण करते हुए और नानाप्रकार की भूमि को देखने की इच्छा से 'नारद' मुनि इस मेदपाट(मेवाड़)देश में आए। इस देश की उन्नति और स्वाभाविक सरलता से आप अधिक प्रसन्न हुए और आपने इस विशाल प्रदेश में कुछ काल तक निवास भी किया। क्योंकि वहाँ आपके नाम से एक नगर बस गया जिसका नाम 'नारद पुरी' पड़ा।

इस अलौकिक नारद पुरी का यथार्थ वर्णन होना कठिन है। क्य यह लेखनी इस कार्य को अच्छी तरह कर सकती है ? कभी नहीं

इस नारद पुरी के पास एक पर्वत के शिखर पर श्रीप्रद्युम्नकुमार ने श्रीनेमीनाथ भगवान् का एक चैत्य (मन्दिर) बनवाया । और उन्हों ने इस मन्दिर में बहुत ही मनोहर और नेत्रों को आनन्द देनेवाली श्रीनेमीनाथ भगवान की प्रतिमा स्थापित की । प्रद्युम्नकुमार इस भगवान् के ध्यान को अपने अन्तःकरण से दूर नहीं करते थे और अहर्निशि धर्म भावना में समय का सदुपयोग करते थे ।

इस नारद पुरी में एक 'कमा' नाम के शेठ रहते थे । उनकी 'कोडीमदेवी' नामकी एक धर्मपत्नी थी । इन दोनों की देव में देवबुद्धि, गुरु में गुरुबुद्धि और धर्म पर भी पूर्ण श्रद्धाथी । अर्थात् यह दोनों सम्यक्त युक्त थे । क्योंकि श्रीहेमचन्द्राचार्य प्रभु कहते हैं कि—

या देवे देवता बुद्धि र्गुरौ च गुरुतामतिः ।
धर्मे च धर्मधिः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥१॥

इन दोनों की श्रीजिनेश्वर में परम भक्ति और साधुजनों में परम प्रीति थी । मन, वचन, कायासे यह दोनों धर्म प्रचार के वीर रूपही होरहे थे । औदार्य, शौर्य गांभिर्यादि उत्तमोत्तम गुण तो मानो इनके दास होकर रहते थे । इस दम्पती के पुत्र सुखका सौभाग्य नहीं प्राप्त था और इस कारण यह बड़े दुःखी रहते थे । किन्तु दोनों मोक्ष के अभिलाषी होने से अपने द्रव्य को*सात क्षेत्रों में खर्चते थे और क्लिष्ट कर्मों को क्षय करने वाले तपमें लवलीन रहते थे । और यह दोनों सर्वदा बड़ी श्रद्धा पूर्वक पञ्चपरमेष्ठी मन्त्र का ध्यान करते थे ।

एक समय की बात है कि कोडीम देवी नित्य नियमानुसार एक रोज पञ्चपरमेष्ठी का ध्यान करती हुई निद्रा के आधीन हो गई । इस देवी ने रात्रि में एक स्वप्न देखा । क्या देखती है कि

* साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, जिनभवन, बिम्ब और ज्ञान

एक बड़ा भारी सिंह, सामने खड़ा है जो कि हस्तिओं के त्रास का निदान भूत गर्जना को करता है, जिसका रंग सर्वदा सफेद है। जिसने अपना मुँह निकाला है। जिसका बड़ा भारी पूंछ गोलाकार हुआ है। इस प्रकार के स्वप्न को सम्यक्प्रकार से देखती हुई आनंद से भरी हुई कोडीम देवीने निद्रा को त्यागा। प्रातःकाल उठ कर उसने अपने पति को नमस्कार करके रात्रिमें देखा हुआ स्वप्न निवेदन किया। क्योंकि पतिव्रता—सती स्त्री के लिये तो स्वप्न अपने पति को ही कहने योग्य हैं।

'कमा' शेठ ने इस उत्तम स्वप्न का फल बड़े विचार पूर्वक कहा कि—" हे प्रिये ! इस उत्तम स्वप्न के फल में तुझे पुत्रोत्पत्ति होगी। " बस ! इस कथन को सुनती हुई कोडीम देवी अतीव आनंद में निमग्न होगई। बस उसी रोज से देवीने गर्भको धारण किया। जब उत्तम जीवका जन्म होने वाला होता है तब माता को उत्तमोत्तम दोहद (गर्भ लक्षण) उत्पन्न होते हैं। इस गर्भ को धारण करने के बाद कोडीम देवी को भी उत्तमोत्तम दोहद उत्पन्न होने लगे। जैसा कि उसके चित्त में इस बातकी बलवती इच्छा हुई कि मै गरीब लोगों को दान दूँ। जिनेश्वर भगवान्की पूजा करूं। मुनिराज के द्वारा भगवानकी वाणी का पान करूं। पवित्र मुनिराजों को दान दूँ। श्रीसंघमें स्वामी वात्सल्य करूं। तीर्थ यात्रा करूं, इत्यादि। कमा शेठ ने विपुल द्रव्य से अपनी शक्त्यनुसार इन इच्छाओं को पूर्ण किया। देवी भी गर्भवती स्त्री के योग्य कार्यों को करती हुई जिसमें किसी प्रकार से भी गर्भ को तकलीफ न होवे उसी प्रकार यत्न पूर्वक रहने लगी।

दिन—प्रतिदिन गर्भ बढ़ने लगा। अनुक्रमे कोडीम देवी ने विक्रम संवत् १६०४ मिती फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के दिन उत्तम

लक्षणोपेत पुत्रको जन्म दिया । इस बालक के मुख पर सूर्य के समान तेज चमकता था । सूति का गृह इन्ही बालक के तेज से देदिप्यमान हो रहा था । कमा शेठ के कुल में—मित्र मण्डल में असीम आनन्द छा गया । शेठने बड़ा भारी जन्मोत्सव किया । अपने नगर के सैकड़ो याचक धनी कर दिये और वहां के राजा उदयसिंह से प्रार्थना करके या द्रव्य से जिस प्रकार होसका बहुत से कैदी कारागार से छुड़वा दिये ।

बालक दिन—प्रतिदिन बढने लगा । सब लोग इसको देखकर आनन्द में निमग्न होजाने लगे । जगत् के इस नये अतिथि के उत्तमोत्तम लक्षण और चेष्टाए देख कर सामुद्रिक शास्त्री लोग कहने लगे कि—'यह बालक इस भूमंडल में जीवों को मोक्ष मार्ग को दिखाने वाला एक धर्म गुरु होगा' । पुत्र को उत्तम लक्षणों से विभूषित देख कर उसका नाम 'जयसिंह' रक्खा गया । अत्यन्त आश्चर्य को करने वाली प्रतिभा वाला यह बालक दिन पर दिन बढ़ने लगा । जयसिंह के उत्पन्न होने के बाद इस गांव की उन्नति अपूर्व ही रूप में होने लगी । अतएव यह बालक सारे नगर को प्रिय हुआ । यह 'जयसिंह' बालक जब पढ़ने के लायक हुआ, तब माता पिताने इस को शुभ मुहूर्त में बड़े महोत्सव पूर्वक पाठशाला में बैठाया । बुद्धिवान 'जयसिंह' बुद्धि के आधिक्य से उत्तरोत्तर अपूर्व विद्याओं की शिक्षा ग्रहण करता हुआ आगे बढ़ा । जब यह अपने अध्यापक से थोड़ समय में सम्पूर्ण विद्याओं को ग्रहण कर चुका तब उनके माता—पिता ने जयसिंह के विद्या गुरुका द्रव्यादिक से बहुत सत्कार किया ।

प्रिय पाठक ! देखिये क्या होता है ? जयसिंह अभी तो बाल्यावस्था में ही है । माता पिता की सेवा-भक्ति कुछ भी नहीं की है ।

पिता को एक पुत्र की लालसा थी, वह संपूर्ण पूरी होगई है। पिताने अभी तो पुत्रका सुख कुछ भी नहीं लिया है। केवल उस के मुखचन्द्र का दर्शन मात्र किया है। ऐसी अवस्था में 'कमा' सेठ क्या सोचते हैं? "मुझे एक पुत्र की इच्छा थी सो धर्म के प्रसाद से पूर्ण हुई है। पुत्र अवस्था के लायक होने आया है। अब मैं इस असार संसार को त्याग करके मोक्ष को देने वाली दीक्षा को ग्रहण करूं" देखिये! पाठक! कैसी संतोष वृत्ति है? उत्तम जीवों के तो यही लक्षण हैं।सेठ को इस असार संसार से विरक्तभाव पैदा हुआ।

एक दिन की बात है—'कमा' सेठ ने बड़ी गंभीरता के साथ अपनी धर्म पत्नी से कहा कि—"हे प्रिये! हे भार्ये! तुम्हें एक पुत्र हुआ है, अब तुम संतोष वृत्ति को धारण करो। मैं अब तुम्हारी अनुमति से तपगच्छनायक गुरुवर्य श्रीविजयदानसूरीश्वर के पास-दीक्षा ग्रहण करूंगा।" पति के यह वचन कोडीमदेवी को तड़ित पात समान लगे। इन वचनों को सुनकर सतीओं में शेखर समान कोडीमदेवी बोली कि—"हे स्वामिन्! हे ईश! जैसे बिना चन्द्रमा की रात्रि सुख दायक हो नहीं सकती है, वैसे आपके विना अज्ञान में रही हुई मैं क्या करूंगी? मेरी क्या गति होगी? सतीओं को माता शरण नहीं है। पिता शरण नहीं है। पुत्र शरण नहीं है। और भाई भी शरण नहीं। किन्तु सतीओं के लिये तो एक पति ही शरण है। अतएव हे स्वामिन्! आप के साथ में हमारा भी मनुष्य जन्म का फल, तपस्या का आचरण ही होना उचित है। अर्थात यह प्राण प्रिय 'जयसिंह' बालक के साथ में भी आपके प्रसाद से आपके साथ में तपस्या और व्रत अंगीकार करूंगी"।

इस प्रकार के विलाप युक्त वचनों को सुन करके सेठ ने कहा कि "हे भार्ये! जैसे सर्प कंचुकी को छोड़ देता है वैसे ही मैं भी

गार्हस्थ्य को त्यागना चाहता हूं । इतना ही नहीं किन्तु यह विचार मेरा निश्चित है । हे प्राण प्रिये ! यह जयसिंह अभी बालक है, अतः तू इसकी रक्षा कर और इसके साथमें तू घर में रह । जब यह बालक बड़ा होजाय तब तुझे दीक्षा ग्रहण करनी हो तो करना । अभी तेरे लिये यह अनुचित बात है ।

ऐसे वाक्यों के समझाने पर कोडीमदेवी ने अपने पतिको दीक्षा लेने की आज्ञा दी । इस समय में तपगच्छनायक श्री विजयदानसूरि जी स्तम्भ तीर्थ में विराजमान थे । अब 'कमा' शेठ दीक्षा लेने के इरादे से नारदपुरी से शुभ मुहूर्त में रवाना होकर थोड़े दिनों में स्तम्भ तीर्थ गए । वहां आकर आचार्य महाराज से प्रार्थना की कि "हे प्रभो ! हे भट्टारक पूज्यपादा ! दीक्षादान से मुझे अनुग्रह करिये !" तदनन्तर आचार्य श्रीविजयदानसूरीश्वर ने संवत १६११ की साल में शुभ दिवस में इनको दीक्षा दी । अब कमा श्रेष्ठी 'मुनि' हुए । खड्ग की धार की तरह चारित्र को पालन करने लगे । धर्म के मूल भूत विनय का सेवन करने लगे । और हृष्ट मन से पूर्व ऋषियों के सदृश 'साधु' धर्म का पालन करते हुए विचरने लगे ।

एक दिन अपने भगिनीपति 'कमा' श्रेष्ठी ने 'दीक्षा ग्रहण की है' ऐसा सुन करके पल्लीपुर (पाली) नगर से 'श्रीजयत' नामके संघपति कोडीमदेवी को मिलने के लिये 'नारदपुरी' आए वहांपर कुछ रोज रहकर जयसिंह और उनकी माता कोडीमदेवी को वह श्रेष्ठी अपने घरपर लाए । मेरु की गुफा में जैसे कल्पवृक्ष और पर्वत की गुफा में जैसे केशरी सिंह निर्भय होकर रहता है, उसी तरह इस पल्लीपुर (पाली) नगर में 'जयसिंह कुमार' अपनी माता के साथ अत्यन्त हर्षित हो रहने लगे और नगर निवासियों को आनन्द देकर समय व्यतीत करने लगे ।

अब इस प्रकरण को यहां छोड़ करके दूसरे प्रकरण में प्रसंगानुसार श्रीमहावीर स्वामी की पाट परंपरा दिखाकर, आगे फिर इसी वार्ता का विवेचन किया जायगा।

—:—

दूसरा प्रकरण।

—:*:—

(श्रीसुधर्मास्वामी से लेकर श्रीविजयदानसूरिपर्यन्त पाटपरंपरा और श्रीतपगच्छकी उत्पत्ति इत्यादि।)

प्रिय पाठक! भगवान् श्रीमहावीर देव की पाट पर पहले पहल गणको धारण करने वाले, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्म और अकिंचन रूप पांच महाव्रतों को प्रगट करने और पालन करने वाले श्रीसुधर्मा स्वामी हुए। तदनन्तर 'श्रीजम्बूस्वामी' हुए। इसके बाद प्रथम श्रुतकेवली 'श्रीप्रभवस्वामी' हुए। प्रभवस्वामी के बाद 'श्रीसय्यम्भवसूरि' हुए। जिन सय्यम्भवसूरिके गृहस्थावस्था में 'श्रीशांतिनाथ भगवान् की प्रतिमा से मिथ्यात्वरूपी अन्धकार दूर होगया। इस पाट पर 'श्रीयशोभद्रसूरि' हुए। तदनन्तर 'श्रीसम्भूतिविजय आचार्य' और उवसग्गहरस्तोत्रसे मरकीकी व्याधि को दूर करने वाले 'श्रीभद्रबाहुस्वामी' हुए। यह दोनों गुरुभाई थे। इन्हों में श्रीसम्भूतिविजय पट्टधर जानना चाहिये। श्रीभद्रबाहुस्वामी गच्छ की सार-सँभाल करने वाले थे, अतएव दोनों के नाम पाट पर लिखे जाते हैं। इन दोनों के पाट पर अन्तिम श्रुतकेवली 'श्रीस्थुलीभद्र' हुए। श्रीस्थूलिभद्र स्वामी के बाद इनके मुख्य शिष्य आर्यमहागिरी और श्रीआर्यसुहस्ति के नामके दो प्रतिभाशाली पुरुष आठवीं पाट पर हुए। आठवीं पाट पर इन दोनों के होने के,

बाद 'सुस्थित' और 'सुप्रतिबुद्ध' इस नामके दो आचार्य हुए। इन दोनों के द्वारा 'कौटिक' नामका गच्छ चला। क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि इन्हों ने एक कोटि बार सूरिमंत्र का स्मरण किया था। यहां पर यह विचारणीय बात है कि श्रीहेमचन्द्राचार्य तो 'सुस्थित सुप्रतिबुद्ध' ऐसा अखंडित नाम वाले एक ही मुनिको मानते हैं। क्योंकि श्रीहेमचन्द्राचार्य प्रभुने अपने त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र की प्रशस्ति में लिखा है कि:——

अजनि 'सुस्थितसुप्रतिबुद्ध' इत्यभिधयाऽऽर्यसुहस्तिमहामुनेः ।
शमधनो दशपूर्वधरोऽन्तिषद् भवमहातरुभञ्जनकुञ्जरः ॥१॥

अब गुर्वावली में तो दो अलग २ सूरि कहे हुए हैं। 'विजयप्रशस्ति' ग्रन्थकारने भी तदनुसार दो पृथक् नाम गिनाए हैं। इन कोटिक गच्छमें क्रमसे 'श्रीइन्द्रदिन्नसूरि' 'श्रीदिन्नसूरि' और 'श्रीसिंहगिरि' होने पर दशपूर्व धर 'श्रीवज्रस्वामी नाम के आचार्य तेरहमी पाटपर हुए। इस वज्रस्वामीने बाल्यावस्थामें ही आचाराङ्गादि ग्यारह अंगों को निर्दम्भ हो के, पारिणामिकी बुद्धि से और पदानुसारिणी लब्धि करके कण्ठाग्र किये थे। श्रीवज्र स्वामी की ख्याति से इस जगत में वज्र शाखा प्रसिद्ध हुई। इस वज्र शाखा की कीर्ति अद्यावधि लोगों में विद्यमान है। वज्रस्वामी के शिष्यों में मुख्य शिष्य 'श्रीवज्रसेन' गच्छ के नायक हुए। इन 'श्रीवज्रसेन' सूरि को 'नागेन्द्र', 'चन्द्र', 'निवृत्ति', और 'विद्याधर' नाम के चार शिष्य थे। इन चारों के नाम से चार कुल उत्पन्न हुए। जैसे कि— नागेन्द्रकुल, चान्द्रकुल, निवृत्तिकुल और विद्याधर कुल। इन चार कुलों में भी चान्द्रकुल जगत में बहुत प्रसिद्ध है। इस चान्द्रकुल के उत्पादक श्रीचन्द्राचार्य से अनुक्रम करके 'श्रीसामन्तभद्र सूरि', 'श्रीवृद्धदेवसूरि', 'श्रीप्रद्योतनसूरि', 'श्रीमान देवसूरि', श्रीमानतु-

द्रसूरि', 'श्रीधीरसूरि ',' श्रीजयदेवसूरि ',' श्रीदेवानन्दसूरि ', ' श्रीविक्रमसूरि', 'श्रीनरसिंह सूरि', ' श्रीसमुद्रसूरि', 'श्रीमानदेवसूरि ', ' श्रीविबुधप्रभसूरि ', ' श्रीजयानन्दसूरि ', ' श्रीरविप्रभसूरि ', 'श्रीयशोदेवसूरि ', ' श्रीप्रद्युम्नसूरि ', ' श्रीमानदेवसूरि ', ' श्रीविमलचन्द्रसूरि ', ' श्रीउद्योतनसूरि ', ' श्रीसर्वदेवसूरि ', ' श्रीदेवसूरि ', ' श्रीसर्वदेवसूरि ', ' श्रीयशोभद्रसूरि ', ' श्रीनेमिचन्द्रसूरि ', ' श्रीमुनिचन्द्रसूरि ', 'श्रीअजीतदेवसूरि',और' श्रीविजयसिंहसूरि ' महोदयों के होने के बाद प्रारंभ से तैतालीसमी पाटपर एकही गुरु के शिष्य श्रीसोमप्रभसूरि और श्रीमणिरत्नसूरीश्वर हुए। तदन्तर इस पाटपर चान्द्रकुल रूपी समुद्र में चन्द्र समान श्रीजगच्चन्द्रमुनीश्वर हुए।

श्रीजगच्चन्द्रसूरीश्वर ने बारह वर्ष पर्यन्त आयंबिल तप की आराधना की। इस तप के प्रताप से पृथ्वीपर कलंक नाश हुआ अर्थात् वह " तपा " ऐसी ख्याति संसार में प्रगट हुई। संवत१२८५ के साल से श्रीजगच्चन्द्रसूरि से इस जगत में ' तपगच्छ ' की प्रसिद्धी हुई। इस तपागच्छ से बढ़कर अन्यत्र सम्यक्चरण-करण-समाचारी रूप क्रिया है ही नहीं। अब इस चवालीसमी पाटपर हुए जगच्चन्द्रसूरिसे अनुक्रमेण ' श्रीदेवेन्द्रसूरि, ' ' श्रीधर्मघोषसूरि, ' ' श्रीसोमप्रभसूरि, ' ' श्रीसोमतिलकसूरि, ' ' श्रीदेवसुन्दरसूरि, ' ' श्रीसोमसुन्दरसूरि, ' ' श्रीमुनिसुन्दरसूरि, ' ' श्रीरत्नशेखरसूरि, ' ' श्रीलक्ष्मीसागरसूरि, ' ' श्रीसुमतिसाधुसूरि, ' महोदयों के होने के बाद पचपनवीं पाटपर सूरीश्वरों में श्रेष्ट ' श्रीहेमविमलसूरि ' हुए। और इनकी पाटरूप कुंभप्रदेशमें ' श्रीआनंदविमलसूरि ' विराजमान हुए। यही श्रीआनंदविमलसूरि सं० १५८२ में एक दिन पत्तन नगर के निकट श्रीवटपल्ली नगरी में अपने शिष्य परिवार श्रीविनयभाव पण्डित आदिकों को साथ में

लेकर पधारे थे। इस समय में साधुओं में परिग्रह और क्रिया में शिथिलता की वृद्धि होगई थी, अतएव इन आचार्य महाराजने उपयोगी वस्त्र, पात्र और पुस्तक को छोड़करके दूसरे सब परिग्रहों को हटाया और क्रिया में भी यथोचित सुधार किया।

पूज्य मुनिवरों का और विशेष करके आचार्यादि उच्च पदवी धारक महाराजों का इस ओर ध्यान होना उचित है। पूज्यो! वर्तमान समय भी ऐसाही आया है जैसा कि श्रीआनन्दविमलसूरि के समय में आया था। आजकल धार्मिक बातों में अनेक प्रकार की शिथिलता देखने में आरही है। इनका अधिक वर्णन करके निन्दा स्तुति करने का यह स्थल नहीं है। इदानीन्तन दोषों को देखकर यह सब लोग स्वीकार करेंगे कि वर्तमान समय में उपर्युक्त दोनों बातों में सुधार करने की बहुतही आवश्यकता है। श्रीआनंदविमलसूरिजी की तरह इस समय में भी कोई सूरीश्वर या मुनि मण्डल निकल पड़े तो क्याही अच्छा हो? अस्तु।

श्रीआनंदविमलसूरि जीने अपनी उपदेश शक्ति से कुतीर्थियों की युक्तियों को नष्ट करके शुद्ध मार्ग का प्रकाश किया। इस सूरीश्वर के प्रभाव से हजारों जीवों ने ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्नत्रय प्राप्त किया। सिवाय इसके अष्ट प्रवचन माता में यत्नवान श्रीआनंदविमलसूरि ने छट्ठ, अट्ठम, आलोचनातप, विशस्थानकतप, अष्टकर्मनाशकतप, आदि तपस्या के द्वारा अपने शरीर को कृश करने के साथ अपने पापों को भी भस्म कर दिया। जिस पूज्यपाद ने श्रीतपागच्छरूप आकाश में उदयावस्था को प्राप्तकर श्रीमहावीरदेव की परम्परारूप समुद्र के तटको अत्यन्तही उल्लास से अलंकृत किया। यह सूरीश्वर ने, अपनी पाटपर आचार्यवर्य श्रीविजयदानसूरि को स्थापित करके सं० १५९६ में समाधी को भजते हुए, अहमदाबाद के निकट निजामपुर नगर में इस मर्त्यलोक को त्याग करके देवलोक को अलंकृत किया।

आचार्य श्रीविजयदानसूरीश्वर इस भूमंडल में अनेक जीवों को शुद्ध मार्ग को दिखाते हुए विचरते रहे। आपने एकादशांगि की और बारह उपांग की प्रतियां को अपने हाथ से कईबार शुद्ध किया। इस श्रीविजयदानसूरिजी की क्रिया, स्वभाव और आचार कुशलता को देखने वाले लोग श्रीसुधर्मास्वामी की उपमा को देते थे। एक दिन की बात है कि श्रीविजयदानसूरिप्रभु मरुदेश को अलंकृत करते हुए क्रमशः 'अजमेरदुर्ग' (लौकिक पुष्कर तीर्थके निकट) पधारे इस दुर्ग में रहने वाले जिनप्रतिमा के शत्रु 'लुंका' नामक कुमति के रागी लोगोंने क्रुर आशय और द्वेष बुद्धि से दुष्ट व्यन्तर भूत-पिशाच वाला मकान विजयदानसूरिजी को ठहरने के लिये दिखाया। सूरीश्वरने भी अपने शिष्य मण्डल के साथ उसि मकान में निवास किया। उस मकानमें रहने वाले दुष्ट देवोंने मनुष्यांको मारने की चेष्टायें शुरु की। वे अनेक प्रकारके बिभत्सरूपों का धारण करके उस समुदायके साधुओं को डराने लगे। एकदिन यह बात साधुओं ने अपने आचार्य महाराज को निवेदन की। आचार्य महाराज ने अपने मनमें विचार किया कि जैसे पानी के प्रवाह से वन्हि का नाश होता है वैसे पुण्य के प्रभाव से यह विघ्न भी आप ही सब शान्त हो जायँगे। उस रोज रातको साधु लोग आवश्यक क्रिया—पौरसी आदि करके सो गये। किन्तु हमारे सूरीश्वरजी निद्रा न लेकर सूरि मंत्रका ध्यान करने लगे। उस समय श्रीविजयदान सूरीश्वर के सामने धींठ होते हुए, हास्य करते हुए, रुदन करते हुए, पृथ्वी पर जोर से गिरते हुए, अनेक प्रकार के विरुद्ध शब्द करते हुए, नाना प्रकार की क्रिड़ाओं को खेलते हुए और बाल चेष्टाओं को फैलाते हुए वे देवता लोग आने लगे। किन्तु उन देवों की सभी चेष्टाएं सूरीश्वर के सामने व्यर्थ होगई।

सूरीश्वर अपने ध्यान में ऐसे निमग्नथे कि इन क्रिया से किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए और बराबर अपना शुद्ध भाव धारण किये आसन पर विराजते रहे। अब नगर वासी सब लोगों को यह विश्वास हुआ कि सूरिश्वर के प्रभाव से व्यन्तरों का सर्वदा के लिये विघ्न दूर होगया। तब लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे "अहो! इन मुनिराजों का कैसा प्रभाव है? कैसा तपस्तेज है? सभी लोग रागी होगए। जैसे सर्प अपनी कंचुकी को शीघ्र त्याग कर देता है उसी तरह यहीं लोगों ने कुमति–कदाग्रह को त्याग करके विशुद्ध मार्ग को अंगीकार किया।

श्रीविजयदानसूरिश्वर ने गुजरात पत्तन नगर–गान्धार बंदर–महीशानक–विश्वल नगर एवं मरु देश में नारदपुरी, शिवपुरी आदि नगरों में, तथा मेदपाट (मेवाड़) में घाटपुर, चित्रकुट दुर्ग आदि में, इसी प्रकार मालव देश में वध्यालयपुर आदि स्थानों में अनेक जिनबिंबों की प्रतिष्ठा कराई। साथही साथ अपने उपदेशसे हजारों जीवों को प्रतिबोधित किया। ऐसे ही अनेक कार्यों को करते हुए श्रीविजयदानसूरीश्वर पृथ्वीतल में विचरते रहे। कहना परमआवश्यक है कि श्रीविजयदानसूरि गच्छ के नायक, धुरंधर आचार्य होने पर भी आप त्याग–वैराग्य में भी किसी से कम नहीं थे। इस बातकी प्रतीति इसी से ही होती है कि आप घृत–दुग्ध–दधि-गुड़-पक्वान्न-तैल ये छः विकृतिओं में से सिर्फ घृतही को ग्रहण करते थे। कहिये। कैसा वैराग्य है? कैसी त्याग वृत्तिहै!! अब यह प्रकरण यहां ही समाप्त करके, आगे के प्रकरणमें श्रीविजयदान-सूरिश्वर के पट्टधर श्रीहीरविजयसूरि जी इत्यादि का वर्णन किया गया है।

तीसरा प्रकरण ।

———:#:———

(हीरविजयसूरि का जन्म, दीक्षा, पण्डितपद, उपाध्यायपद,-
आचार्यपद इत्यादि)

श्रीहीरविजयसूरि का जन्म सुप्रसिद्ध गुजरात देश के भूषणरूप प्रल्हादपुर (पालनपुर) मे हुआ था। प्रल्हादपुर के विषय में एक ऐसी कथा हैः—

" प्राचीनकाल में एक 'प्रल्हाद' नामका राजा हुआ था। उस राजाने श्रीकुमारपाल राजाकी बनवाई हुई सुवर्णमयी श्रीशान्तिनाथ-भगवान् की प्रतिमा अग्नि में गलादी। और उसकी रूप बनाकर अचलेश्वरके सामने स्थापित किया। अब इस पापसे राजाको महा-दुष्ट-कुष्टका रोग उत्पन्न हुआ। इस रोग के कारण राजा का तेज लावण्य इत्यादि जो कुछ था सब नष्ट होगया। राजा ने अपने नाम से प्रल्हादपुर (पालनपुर) नामका ग्राम बसाया। इसके बाद श्री शान्तिनाथप्रभुकी मूर्तिको गलादेनेसे जो पाप लगाथा उसकी शान्ति के लिए राजा ने अपने नगर में श्रीपार्श्वनाथप्रभु का 'श्रीप्रल्हादन-विहार' नामका चैत्य बनवाया। इस मन्दिर के बनवाने के पुण्य से राजा का रोग शान्त होने लगा। और कुछ दिनों के बाद राजा ने अपने असली रूप तथा लावण्य को प्राप्त किया। सारे नगर के लोग इस पार्श्वनाथप्रभु के दर्शन से सर्वदा अपने जन्म को कृतार्थ करने लगे।"

इसी नगर में एक 'कुंरा' नामका श्रेष्ठी रहताथा। यह सत्पुरुष श्रेष्ठ बुद्धि, दया-दाक्षिण्य—निर्लोभता-निर्मोयिता-इत्यादि सद्गुणों से अलंकृत था। इतना ही नहीं यह सेठ ब्रह्मचारी गृहस्थों में एक शिरोमणि रत्न था। इस महानुभावको एक 'नाथी' नाम की बड़ी

सुशीला भी थी । यह पतिव्रता अपने पति के साथ सांसारिक सुखों को आनन्द अनुभव करती थी। इस धर्म परायणा नाथीदेवी ने उत्तम गर्भ को धारण किया । जिस प्रकार शुक्ति में मुक्ताफल दिन प्रतिदिन बढ़ता है। उसी प्रकार गर्भवती का गर्भ भी दिन पर-दिन बढने लगा । इस उत्तम गर्भ के प्रभाव से शेठ के घर में ऋद्धि-समृद्धि की अधिक वृद्धि हो गई ।

नवमास पूरे होने के अनन्तर सं० १५८३ के मार्गशीर्ष सुदी ९ के दिन इस देवीने उत्तमोत्तम लक्षणोपेत पुत्र को जन्म दिया। शेठ ने इस पुत्रके जन्मोत्सव में बहुत ही उत्तमोत्तम कार्य किये । शेठ के यहां कई दिनों तक मंगलगीत होने लगे । याचकों को अनेक प्रकार से दान दिए। सारे नगर के आबाल वृद्ध सब प्रसन्न मन होकर उस महोत्सव मे सम्मिलित हुए । 'उत्तम पुरुषों का जन्म किस को आनंद देने वाला नहीं होता है ? चन्द्रमा की कला के समान दिन प्रतिदिन यह प्रतिभाशाली बालक बढ़ने लगा । जो लोग इसको देखते थे वो यही कहते थे कि यह भारतवर्ष का अपूर्व तेजस्वी हीरा होगा । इस बालक की माता ने स्वप्न में 'हीरराशी' ही देखीथी। पुत्र के उत्तमोत्तम लक्षण भी छिपे हुए नहीं थे। अर्थात् यह हीरे की तरह चमकता था। बस कहना ही क्या था? सब लोगों ने मिल कर इसका नाम भी 'हीरा' रख दिया । लोग इसको 'हीरजी' करके पुकारते थे । काल की महिमा अचिंत्य है। हुआ क्या? हमारे हीरजी भाईके माता पिताने थोड़े ही दिनों में सम्यक् आराधना पूर्वक देवलोक को अलङ्कृत किया । कुछ दिन व्यतीत होने के बाद हीरजी भाई अपने माता-पिता का शोकदूर करके अपनी बहन को मिलने के विचार से श्रीअणहिलपाटक (अणहिलपुर पाटन) गये। बहन अपने भाईकी सुन्दर आकृति को

देख कर बहुत ही हर्षित हुई । वह सच्चे प्रेम का पान करने लगी ।
प्रिय पाठक ! अब देखिये क्या होता है ? ।

इधर मुनिपुङ्गव सद्गुणनिधान श्रीविजयदानसूरीश्वरजी भी उसी नगर में विराजमान थे । जन्म संस्कार से हमारे हीरजीभाई का साधुपर पूर्ण प्रेम था । एक रोज हीरजीभाइ उपाश्रय में चले गए । सूरीश्वर को नमस्कार करके एक जगह बैठगए । तब सूरिजी ने इन्हीं के योग्य बहुत ही मनोहर धर्म देशना दी । 'निकटभवीपुरुषों के लिये थोड़ी भी देशना बहुत उपकार कारक होती है ।' बस ! उपदेश सुनतेही हीरजी को संसारसे विरक्तभाव पैदा होगया । हर्ष प्रकर्ष से गद गद होकर अपनी बहनके पास आकरके बड़े विनय भाव से कहने लगेः—

"हे सोदरि ! हे बहन ! मैंने आज संसार सागरसे तारने वाली और अपूर्व सुखको देनेवाली श्रीविजयदानसूरीश्वर महाराज के मुखारविंद से धर्म-देशना सुनी है । अब मैं उन गुरूजी से अवश्य दीक्षा ग्रहण करूंगा । अतएव हे प्रिय बहन ! तू मुझे आज्ञादे "।

इस वाक्य को सुनते ही बहन का कलेजा भर आया और वह अश्रुमुखी होती हुई अपने लघु बन्धु को बड़े प्यार से कहने लगी ।

हे प्रिय बन्धो ! हे कोमल हृदयी वत्स ! तेरे लिये दीक्षा बड़ेही कष्ट से सेवन करने योग्य है । भाई ! दीक्षा लेने के बाद धूप-जाड़ा सहन करना पड़ेगा । खुलाशिर रखना पड़ेगा । केश का लुञ्चन करना पड़ेगा । नंगे पांव से चलना पड़ेगा । घर २ भिक्षा मांगनी पड़ेगी । अनेक प्रकारकी तपस्याओं का सेवन करना पड़ेगा । बाइस परिसहों को सहना पड़ेगा । इस लिये अभी तेरे लिये दीक्षा योग्य नहीं है । तू प्रथम तो एक सुरस्त्री जैसी पद्मणी स्त्री के साथ शादी करले । उनके साथ में अनेक प्रकार के सांसारिक सुखों को

भोग ले । हे वत्स ! जैसे लता को वृक्ष आधार है वैसे मेरे लिये तू ही आधार है " ।

एस २ मधुर वचनों से समझाने पर भी हीरजी अपने विचार में निश्चल रहा और उसने वैद्यकी तरह वैराग्य वचनरूपी औषधि से अपनी बहन के हठरूपी रोग को दूर किया ।

इसके बाद हीरजी उपाश्रय में आकर वन्दनापूर्वक गुरु महाराज से कहने लगा-' हे भगवन् ! आपके पास में क्लेश को नाश करने वाली दीक्षा ग्रहण करने आया हू । मेरी इच्छा है कि आपसे में दीक्षा ग्रहण करू । आचार्यवर्य इस बालक के कामल वचनों को सुनते ही हर्षित होगये । क्योंकि कहा भी है कि—

'शिष्यरत्नस्य प्राप्तौ हि हर्ष उत्कर्षभाग् भवेत्'

शिष्यरत्न की प्राप्ति में बड़े लोगों को भी हर्ष होता है । सामुद्रिक शास्त्र में कहे हुए उत्तम लक्षणों को देख करके तपगच्छनायक श्रीविजयदानसूरिजीने निश्चय किया कि यह बालक होनहार गच्छनायक देख पड़ता है । अस्तु ! इसके बाद अतुल द्रव्य खर्च करके एक बड़ाभारी दीक्षा महोत्सव किया गया । खान पान नाटक चेटक इत्यादि बड़ी धूमधामके साथ एक सुंदर रथ में बैठाकर नगर के समस्त मनुष्यों से वेष्टित इस कुमार को नगर के मध्य में हो करके लेचले । इस प्रकार से बड़ समारोह के साथ वनको जाते हुए बालक को दर्शक लोग आश्चर्य में होकर देखने लगे । नियत किए हुए स्थान में स० १५९६ कार्तिक कृष्ण द्वितीया के दिन शुभमुहूर्त में हीरकुमार न श्रीविजयदान सूरीश्वर के पास दीक्षा ग्रहणकी । गुरु महाराजने इसका नाम 'हीरहर्ष' रक्खा । इसके बाद यह मुनि ज्ञान दर्शन चारित्रकी आराधना सम्यक् प्रकार से करते हुए गुरुचरणारविंद की सेवा में लवलीन रहते हुए गुरुवर्य के साथ में हर्षपूर्वक विचरने लगे ।

अब हीरहर्षमुनि, प्राणाति पात-मृषावाद-अदत्तादान-मैथुन और परिग्रह विरमणरूप पांच महाव्रतों को, इर्यासमिति-भाषासमिति-एषणा-समिति-निक्षेपणासमिति-पारिष्ठापनिकासमिति रूप पांच समिति को, मनगुप्ति-वचनगुप्ति-कायगुप्ति रूप तीनगुप्ति को सम्यक्प्रकार से पालन करने लगे। आपने थोड़े ही समय में अपने गुरु महाराज से स्वशास्त्र का सम्पूर्ण अभ्यास कर लिया और जैनसिद्धान्त के पारगामी होगए। एक दिन गुरुवर्य श्रीविजयदानसूरिजी अपने अन्तः-करण में सोचने लगे कि "यह हीरहर्षमुनि बड़ाबुद्धिमान है, तार्किक है, अतएव यह अगर शैवादिशास्त्रों को जानने वाला होजाय तो बहुत ही उत्तम हो। जगत में यह अधिक उपकार कर सकेगा, जैन शासन का उद्योत भी विशेषरूपेण कर सकेगा।" इस विचार को मुनि महा-राज ने केवल मन ही मात्र में न रक्खा, किन्तु इसको कार्य में लाने की भी कोशिश की। आप ने शीघ्र हीरहर्षमुनि को दक्षिण देश में जाने की प्रेरणा की। क्योंकि उस समय में दक्षिण में शैवादि शास्त्रों के वेत्ता अच्छेर पण्डित उपस्थित थे। हीरहर्ष तो तय्यारही थे। केवल आज्ञा की ही देरी थी। श्रीविजयदानसूरीश्वर ने श्रीधर्मसागरगणि प्रमुख चार मुनिराजों के साथ में हीरहर्ष को दक्षिण देशकी ओर भेजा। दक्षि-ण देश में एक देवगिरिनामका किला था। वहां जाकर इन पांचों मु-नियों ने निवास किया। इस देवगिरि में रह कर इन्होंने चिन्तामण्यादि शैवादि शास्त्रों का प्रखर पाण्डित्य थोड़े ही दिनों में प्राप्त किया। कार्य सिद्धि होने के बाद ये लोग तुरन्तही गुजरात देश में लौट आए। जिस समय यह गुजरात आए उस समय गुरुवर्य्य श्रीविजयदानसूरि, गुजरात में नहीं थे किन्तु मरुदेश में विहार कर गये थे। अत एव गुरु महाराज के दर्शन करने में उत्सुक श्रीहीरहर्षमुनि ने भी मरुदेश प्रति प्रस्थान किया। थोड़े ही दिनों में नारदपुरी, जहां श्रीविजयदानसूरी-

द्वर विराजते थे, आ पहुंचे। बस ! कहना ही क्या ? बड़े विद्वान् और विनयवान् शिष्य के आने से गुरुमहाराज को अत्यन्त हर्ष प्राप्त भया। हीरहर्ष के लिए तो कहनाही क्या ? इस महानुभाव को तो गुरुमहाराज को देखते ही हर्ष के अश्रु निकलने लगे। तात्कालिक बनाये हुए १०८ श्लोक का पाठ करके, बद्धाञ्जलीपूर्वक, विधि सहित हीरहर्ष ने गुरुमहाराज को वंदना की। चन्द्र को देख करके जैसे समुद्रकी उर्मियें उल्लास को प्राप्त होती है। वैसे ही पुत्र समान, विद्वद्कलासम्पन्न शिष्य को देख २ कर गुरुवर्य महाराज हर्षित होने लगे।

कुछ समय बाद उसी नारदपुरी नगरी में सं-१६०७ में शुभदिन को देख करके श्रीऋषभदेवप्रभु के प्रसाद में गुरुमहाराज ने इन हीरहर्ष को सभा समक्ष 'विद्वद्' पद दिया। इस पद को पालन करते हुए केवल एकही वर्ष हुआ कि नारदपुरी के समस्त श्रीसंघने तपगच्छाचार्य श्रीविजयदानसूरि महाराज से प्रार्थना की 'हे प्रभो हम लोगों की यह प्रार्थना है कि श्रीहीरहर्ष पण्डित को 'उपाध्याय' पद दिया जाय तो बहुतही उत्तम बात है। गुरुमहाराज के मनमें तो यह बात थी ही और संघने विनति की। सूरिजी महाराज के विचार और भी पुष्ट हुए। इसके बाद सं० १६०८ मिती माघ शुक्ल पञ्चमी के दिन नारदपुरी ही में श्रीसंघ के समक्ष श्रीवरकाणा पार्श्वनाथकी साक्षी में, श्रीनेमिनाथ भगवान् के चैत्य में गच्छ में उपस्थित समस्त साधुओं की अनुमति सहित श्रीहीरहर्ष पण्डित 'उपाध्याय' पद पर स्थापित किए गये।

उपाध्याय पद पर नियत होने के पश्चात् सूरिजीने सोचा कि श्रीतपागच्छ का आधिपत्य हीरहर्षोपाध्याय को होगा'। ऐसा विचार करके आपने सूरिमन्त्र का आराधन करना आरम्भ किया। जब पूरे तीन

मास होगये, तब सूरिमंत्र का अधिष्ठायक देवता अत्यन्त हर्षपूर्वक श्रीसूरिमहाराज के सन्मुख प्रत्यक्ष होकरके कहने लगाः-' हे प्रभो! हीरहर्ष नामक वाचक आपकी पाटपर स्थापन होने योग्य है'। बस! इतनाही कह करके वह अन्तर्धान होगया।

देवता का उपरोक्त वचन सुन करके सूरिजी को अत्यन्त हर्ष हुआ। आपने अपने मन में विचार किया कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस देवताने मेरेही अभिप्राय को स्पष्ट रूपसे कहा। सूरीश्वर ने आ करके यह वार्ता अपने मंडल में प्रकाश की। समस्त साधुमण्डल ने यही कहा कि "जैसी आपकी इच्छा हो, वैसेही कार्य होगा'। इसके बाद सं० १६१० मिती मार्गशिर्ष शुक्ल दशमी के दिन शुभमुहूर्तमें महोत्सव पूर्वक 'शिरोही' नगर में चतुर्विध संघकी सभा के समक्ष परमगुरु श्रीविजयदानसूरीश्वर ने तपगच्छ के साम्राज्यरूप वृक्षके बीज भूत श्रीहीरहर्ष वाचक को 'आचार्य' की पदवी दी। सूरिपद होने के समय श्रीहीरहर्षोपाध्यायका नाम 'श्रीहीरविजयसूरि' रक्खा गया।

प्रियपाठक! देख लीजिये! आचार्य पदवीयोंकी कैसी परिपाटी थी?। भाग्यवान् पुरुष पदवी को नहीं चाहते हैं किन्तु पदवीएं भाग्यवानों को चाहती है। खेद का विषय है कि आजकल के लोग पदवीयों के पीछे हाथ पसारे घूमते—फिरतेहैं। गृहस्थों के सैंकड़ों-हजारों रुपये नष्ट करवा देते हैं। फिर भी पदवी मिली तो मिली नहीं तो लोक में अप्रतिष्ठा होती है। क्या दो-चार पण्डितों को किसी प्रकार प्रसन्न कर लिया और इसी रीति से कोई भी टाइटल पाकर कृतकृत्य होजाना ही यथार्थ पदवी पाना है? ऐसा नहीं है, यदि उच्च पदपर बैठने की इच्छा है तो पदवी परमात्मा के घरकी लेने की

कोशिश करनी चाहिये । किन्तु ठीक है ! निर्नाथ जैन प्रजा में वर्तमान समय में जो न हो सो थोड़ा है ।

'शिरोही' नगर से विहार करते हुए श्रीविजयदानसूरि महाराजने श्रीहीरविजयसूरि को पत्तन (पाटण) नगर में चातुर्मास करने की आज्ञा दी । और आप स्वयं कोकण देश की भूमि को पवित्र करते हुए सूरत बन्दर पधारे ।

चौथा प्रकरण ।

(श्रीविजयसेनसूरि की दीक्षा, उपाध्याय-आचार्यपद, 'मेघजी' आदि सत्ताईस पण्डितों का लुंपाकमत त्यागना, और सुरत में दिगम्बर पण्डित, श्रीभूषण के साथ शास्त्रार्थ करके उसको परास्त करना इत्यादि)

इधर 'जयसिंह' बालक अपनी माता के साथ अपने मामा के यहां पश-आराम से दिवस व्यतीत कर रहा है । समस्त लोगों को आनंद दे रहा है । एक रोज यह बालक अपनी माता से कहने लगा "हे जननि ! हे मातः ! अब मैं अपने पिता 'कमा' ऋषि की तरह जन्म-मरणादि व्यपत्तियों को नाश करने वाली दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा वाला हूं, अर्थात् जो मार्ग मेरे पिता ने लिया है वही मार्ग मैं लेना चाहता हूं" ।

इन वाक्यों को सुन करके माता कहने लगी "हे बालक ! तू अभी बहुत छोटा है । लोहमार की तरह विषम भोग वाली और शारीरिक सौख्य को ध्वंस करने वाली दीक्षा अभी तेरे योग्य नहीं

है। हे पुत्र ! तीक्ष्ण तलवार की धारपर चलना सुगम है। किन्तु दीक्षा ले करके उसको पालन करना बड़ा कठिन है। हे सुकुमार ! अभी तू एक मनोहर रूपवाली कन्या के साथ विवाह करके गृहस्थावस्था का समस्त सुख भोगले। देवांगना तुल्य सुंदर स्त्री के साथ देवता की तरह समस्त सुखों का अनुभव करले "।

इस प्रकार माताके वचनों को सुनता हुआ 'जयसिंह' बालक बोला "हे मातः ! आसन्नोपकारी श्रीमहावीर देवने मुक्तिमार्ग में निबद्ध बुद्धि वाले पुरुषों के लिये तो गृहस्थावस्था महा पापका कारण दिखलाया है। अतएव मुझे तो ऐसे अगारवास की इच्छा नहीं है। यह स्त्री और यह नाटक-चेटक, सज्जन पुरुषों को हर्ष दायक नहीं होते हैं। मैं समस्त प्राणियों में अद्भुत अभयदान को देने की इच्छा करता हूं। हे अम्बे ! समाधियुक्त मन वाले महात्मा पुरुषों के मार्गमें चलने का मेरा विचार है और उस मार्गमें संसार सम्बन्धी दुष्कर्म-व्यापार-प्रयासादिरूप आपत्तियें सर्वदा नहीं है। अतएव मेरी तो यही इच्छा है कि तुम भी शीघ्रतया वत्सुक मन होजा। अर्थात् संयम स्वीकार करने में मेरी सहायता कर। इन वाक्यों को सुनकर और बालक का निश्चय विचार जान कर एक दिन इस बालक को साथ में ले करके कोडिमदेवी ने सुरत जाने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में जगह २ देवदर्शन-गुरुदर्शन करते हुए, त्रस-स्थावर जीवों की रक्षा करते हुए और भावचारित्र को धारण करते हुए बहुत दिन व्यतीत होने के बाद यह लोग सूरतबन्दर में जापहुंचे। इस समय सूरत बन्दर में श्रीविजयदानसूरीश्वर विराजते थे। अपने सुकुमार वयस्क बालक को साथ लेकर कोडिम देवी ने गुरु महराज को विधि पूर्वक प्रणाम किया। विनीत भावसे हाथ जोड़कर कहने लगी। मेरी यह इच्छा है कि इस बालक के

सहित आपके पास चारित्र ग्रहण करूं । आप हम दोनोंपर अनुग्रह करिये "। देवी के इस वचन को सुनकर और मनोहर आकृति युक्त बालक को देखकर गुरु महराज अपने अंतःकरण में हर्षित हुए । इस 'जयसिंह' बालक के मुख माधुर्य में गुरु महाराज की दृष्टि बार २ स्थिति पूर्वक पड़ने लगी । इस बालक के प्रत्येक शरीर वचन और गति इत्यादि को शास्त्रोक्त रीत्या देखकर गुरु महाराज ने सोचा कि यह बालक इस जगत में प्रभावशाली पुरुष होगा । पराक्रमी और अपूर्व कार्यों को करने वाला होगा ।

यह विचार करते हुए आपने दीक्षा देने का विचार निश्चय रक्खा । श्राद्धवर्गने एक बड़ा भारी अठाई महोत्सव बड़ी धूम धाम से किया । जिसका वर्णन इस लेखनी की शक्तिसे बाहर है । दीक्षा के दिन अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत 'जयसिंह' कुमार हस्तिपर आरोहण होकर, शहर के समस्त मार्गों में परिभ्रमण करता हुआ और अतुलदान को देता हुआ गुरु महराज के पास आया । नियत किये हुए स्थान में सं० १६१३ मिती ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी के दिन शुभ मुहूर्त में 'जयसिंह कुमार' और उनकी माता कोडिमदेवी को दीक्षा दीगई । गुरु महाराजने 'जयसिंह' का नाम 'जयविमल' रक्खा । दीक्षा देने के अन्तर सूरीश्वर ने यह चातुर्मास सूरत में ही किया । यद्यपि इस समयमें जयसिंह (जयविमल) मुनि ६ ही वर्ष के थे तथापि अपनी शुद्ध बुद्धि से उन्होंने वज्र स्वामी की तरह शास्त्राध्ययन कर लिया । अर्थात गुरु महराज से कितनेही शास्त्र पढ़ लिये ।

एक दिन श्रीविजयदानसूरीश्वर ने विचार किया कि 'यह जयविमल विनयादि गुणोंसे विभूषित है, तीक्ष्णबुद्धि वालाहै, उत्तम लक्षण वाले है अतएव यह मुनि हीरविजयसूरि के पास में विशेष योग्यता

प्राप्त करेगा ' बस। यही विचार दृढ़ करके महाराज ने जयविमल को गुजरात जानेके लिये आज्ञा दी। विहार करते हुए जयविमलको उत्तमोत्तम लाभ सूचक शकुन हुए। आप जगदहउपदेश दानको करते हुए बहुत दिनों मे गुजरात जा पहुँचे। गुजरातमें भी अणहिलपुर पाटन, कि जहां श्रीहीरविजयसूरि जी विराजते थे वहां गए। नगर में प्रवेश करने के समय भी जयविमल को बहुत कुछ अच्छेर शुकन हुए। आचार्य श्रीहीरविजयसूरिजी के पाद पंकजमें नमस्कार करने के समय बड़े हर्ष पूर्वक जयविमल के मस्तकपर श्रीहीरविजय सूरिजी ने अपना हाथ स्थापन किया। इस लघुमुनि को देख कर समस्त मुनिमण्डल और शहर के लोगों को चित्तमें अपूर्व आनन्द अभिव्याप्त हो गया। सब लोग उनकी ओर देखने लगे। 'जयविमल' मुनि विनय पूर्वक श्रीहीरविजयसूरिजी से विद्या को ग्रहण करते हुए विचरने लगे।

इधर श्रीविजयदानसूरिजी सुरत बन्दर से विहार करते हुए और अनेक जीवों को प्रतिबोध करते हुए 'श्रीवटपल्ली' नगरी में आए। यहां पर आपने अपना अंत समय जाना। संयमरूपी शिखर में ध्वजतुल्य, और पाप को नाश करने वाली आराधना को किया और अरिहंतादि चार शरणों का ध्यान करते हुए, और चार आहारों के त्याग रूप अनशन को करके श्रीविजयदानसूरीश्वर ने सं० १६२१ वैशाख शुक्ल द्वादशी के दिन देव लोक को भूषित किया। इस स्वर्गवासी सूरीश्वरकी भक्ति में लीन इस नगर के श्रीसंघने गुरु पादुका की स्थापना रूप एक स्तूप भी निर्माण किया।

अब तपागच्छ रूपी आकाश में हीरविजयसूरि रूपी सूर्य का प्रकाश फैलने लगा। सारे गच्छका कार्य आपही के शिर पर आपड़ा।

एक समय में हीरविजयसूरि को इच्छा सूरिमंत्र की आराधना करने की हुई, विहार करते हुए आप 'डीसा' शहर में पधारे जहाँ बड़े आस्तिक और धर्म-प्रिय लोग रहते थे। इस नगर में साधुसमुदाय को पढ़ाने का, योग वहनादि क्रियाओं को कराने का और व्याख्यान इत्यादिके देने का कार्य श्रीजयविमल के ऊपर नियत करके श्रीहीरविजय सूरिजी ने त्रिमासिक सूरिमंत्र का ध्यान करना आरम्भ किया। एक दिन ध्यानारूढ़ सूरिमंत्र में तल्लीन सूरिजी को जान कर सूरिमंत्रका अद्भुत अधिष्ठायक देवता सूरिकी सामने उपस्थित हुवा और बोला। " हे भगवन् ! आपकी पाट श्रीजयविमलगणि के योग्य है । " इस प्रकार की देव वाणी को सुन कर आचार्य बहुत प्रसन्न हुए। हीरविजयसूरि जी जब ध्यान से मुक्त हुए तब इन्हों ने यही विचार किया कि-जय विमल नामके शिष्यशेखर को अपनी पाट पर स्थापन करना चाहिये। यह विचार आपने साधु साध्वी-श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध संघके समक्ष सूचित किया। क्योंकि जब तक मानने वालों की रुचि और श्रद्धा न हो, तब तक भारीसे भारी पदवी हो तो भी उससे कुछ कार्य नहीं निकल सकता। प्राचीन काल में आज कलके समान नियम नहीं था कि चाहे कोई माने चाहे न माने, पर पदवी का विशेषण नाम में अवश्यही लगाया जाय गा। अब तो यह चाल है कि पदवीधर अपने को पदवीयोग्य समझता है बस वह लम्बेर पर अपने नाम में लगा ही लेगा। चाहे कोई उसकी माने या न माने। इससे बढ़ कर शोक की क्या बात होगी ? धन्य है उन महात्माओं को कि जो सच्चे पदवी धर होने पर भी अपने को कभी आपसे 'मुनि' शब्द का विशेषण भी नहीं लगाते हैं।

हीर विजयसूरि जी के विचार का समस्त संघने सानंद अनु-

मोदन दिया। इसके बाद 'डीसा' नगर से आपने शिष्यमण्डल के साथ विहार किया।

जयसिंह मुनिने श्रीहीरविजयसूरिजी से स्व-परशास्त्र भी अपने स्वाधीन कर लिए। इन्हों ने व्याकरण सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ पढ़ने के साथ ही काव्यानुशासन-काव्यप्रकाश-वाग्भट्टालंकार-काव्यकल्पलता-छन्दानुशासन-वृत्तरत्नाकर आदि ग्रन्थों का भी अभ्यास किया। न्याय शास्त्र में स्याद्वादरत्नाकर-(यह ग्रन्थ अणहिलपुरपाटन में राजा सिद्धराज जयसिंह के समक्ष 'कुमुदचन्द्र' नाम के दिगम्बर आचार्य के साथ विवाद करके 'जयवाद' प्राप्त करने वाले श्रीदेवसूरि ने बनाया है) अनेकान्त जयपताका-रत्नाकरावतारिका-प्रमाणमीमांसा न्यायावतार-स्याद्वादकलिका, एवं सम्मतितर्कादि जैन न्यायग्रन्थ तथा तत्त्वचिंतामणि किरणावली-प्रशस्तपादभाष्य इत्यादि अन्य शास्त्रों का अभ्यास करके

कुछ दिन के पश्चात् स्तम्भतीर्थ से सूरीश्वर ने अपने शिष्य मण्डल के सहित विहार किया। और विहार करते हुए अहम्मदाबाद आपहुचे। अहमदाबाद के समीपवर्ती अहम्मदपुर नाम के शाखापुर में आपने निर्विघ्नसे चातुर्मास समाप्त किया। एक दिन श्रीहीरविजयसूरिजी रात्रि में पोरसी पढ़ाकर गच्छविषयक चिंता करते हुए सोगये। उस समय एक अधिष्ठायिक देव आकरके कहने लगा। 'हेसूरीश्वर! इस जयविमल पण्डितको 'पट्टप्रदान' करने में आपको क्यों अनुत्सुकता मालूम होती है? । हे पूज्य! यह पट्टधर श्रीमहावीर परमात्माकी पाटपरंपरा में एक 'दिवाकर' होगा, इतने शब्द कह करके वह देव अदृश्य होगया।

इसके पश्चात् वाचक-उपाध्याय पण्डित गितार्थ प्रमुख समस्त मुनिगण ने नम्रता के साथ आचार्य महाराज से प्रार्थना की 'हेप्रभो! श्रीसंघ की इच्छा श्रीजयविमल पण्डित को 'आचार्य' पद पर स्थापन करने की है। और यह इच्छा जैसे बने शीघ्र कार्य में परिणत होनी चाहिये।' देववाणी संघवाणी और अपना अभिप्राय यह तीनों की ऐक्यता होने से आचार्य महाराज ने कहा "एवमस्तु॥" तदनन्तर अहम्मदाबाद के श्रीसंघ के अत्याग्रह से, सूरिजीमहाराजने शहर में प्रवेश किया। प्रवेश होने के बाद ही 'आचार्य' पदवी के निमित्त एक महोत्सव श्रीसंघकी तर्फ से आरम्भ हुआ। इस समय में इस नगर के नगर शेठ, गृहस्थ धर्मप्रतिपालक, श्रेष्ठी 'श्रीमूलचन्द्र' ने विचार किया कि न्यायोपार्जित द्रव्य के फल अर्हत्प्रतिष्ठा करना, जिनचैत्य, जिन पूजा, गुरुभक्ति और ज्ञानप्रभावना ही धर्मशास्त्रों में कहे हुए है। अतएव उन फलों को शक्त्यनुसार मुझको भी प्राप्त करना योग्य है। मैंने श्रीशत्रुञ्जयतीर्थ में श्रीऋषभदेव भगवान के प्रसाद की दक्षिण और पश्चिम दिशा में एक चैत्य बनवाया

है। उसी प्रकार यह अवसर भी मुझे अपूर्व ही प्राप्त हुआ है। इस लिए इस कार्य में भी कुछ लक्ष्मी का व्यय करके योग्य फल प्राप्त करूं। ऐसा अवसर पुनः नहीं प्राप्त होता है।

जिस के अन्तःकरण में ही ऐसे भाव उत्पन्न हो गए, वो क्या नहीं कर सकता है। इस श्रेष्ठीने इस समय में दान शालाएं खुलवा दी। स्वामीवात्सल्य करना आरंभ किया। मंगलगीत गाने वालों को बैठा दिया। वरघोड़े निकालने आरंभ किए। कहां तक कहा जाय? इन्होंने बहुत द्रव्यों को लगा कर इस महोत्सव की अपूर्व शोभा बढ़ा दी। इस प्रकार के महोत्सव पूर्वक संवत् १६२८ मिती फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन शुभ मुहूर्त में 'जयविमल' को प्रथम उपाध्याय पद पर स्थापन करके तुरन्त ही 'आचार्य' पद दिया गया। इस नव सूरिका नाम श्रीहीरविजय सूरीश्वर ने 'श्री-विजयसेनसूरि' रक्खा। इस 'आचार्य' पदवी के समय में और भी बहुत से मुनिराजों को पदवीएं मीली। जैसे कि श्री विमलहर्ष पण्डित को 'उपध्याय' पद, पद्मसागर-लब्धिसागर आदि को 'पण्डित' पद इत्यादि। इस महोत्सव पर उपस्थित समस्त देशों के लोगों को एक—एक रुपये की प्रभावना की गई, और याचक लोगों को भी द्रव्य-वस्त्रादि से दान दिया गया।

यह दोनों गुरू शिष्य (आचार्य) श्रीतपागच्छ रूपी शकट के प्रतिभाशाली चक्र को चलाने वाले हुए। आचार्य पदवी होने के बाद कुच्छ रोज तो आपका वहां ही रहना हुआ। तदन्तर लोगों को धर्मोपदेश देते हुए विचरने लगे। जिस समय में यह दोनों विद्वान् सूरि धर्मोपदेश करते हुए विचरने लगे, उस समय कुतीर्थियों का प्रचार अनेक स्थानों से उठ गया और उनकी स्वार्थ लीला की महिमा अधिकांश में कम हो गयी।

जिस समय में श्रीहीरविजयसूरीश्वरजी, श्रीविजयसेनसूरी श्वर के साथ में गुजरात देशमें विचरते थे । उस समय में एक अभूत पूर्व बात देखने में आई।

लुम्पाकमतका अधिकारी मेघजी नाम का एक विद्वान् था, स्वयं शास्त्र देखने से जिन प्रतिमा को देख कर अपने अन्धत्व को दूर करने की वाञ्छा थी । श्रीहीरविजयसूरि प्रभृति इस बात को सुन करके बड़े हर्षित हुए। और इस बात को सुन करके श्रीविजयसेनसूरि इत्यादि पुनः अहम्मदाबाद पधारे। श्रीसूरीश्वरों के आने के बाद 'मेघजी' ऋषि अपने सत्तावीस पण्डितों के साथ, श्रीसूरिजी के सम्मुख उपस्थित हुआ। लुपाक मतको त्याग करके श्रीसूरीश्वर के सत्योपदेश को उसने ग्रहण किया। सूरीश्वर ने इन 'मेघजी ऋषि' आदि की इच्छा से इन लोगों को बड़े महोत्सव के साथ नवीन शैक्षत्व में स्थापित किया। मेघजी ऋषि आदि श्रीआचार्य के साथ में शास्त्राध्ययन को करते हुए, बड़े विनयभाव से रहने लगे। इससे लोगों को और ही आनंद होने लगा।

कुछ समय के उपरान्त अहमदाबादसे विहार करके आचार्य-उपाध्याय-पंडित एवं मेघजी आदि समस्त मण्डल के साथ में विचरते हुए श्रीहीरविजयसूरिजी 'अणहिलपुर' पाटन आए। आपने चातुर्मास भी यहां ही किया। चातुर्मास समाप्त होने के बाद सं—१६३० मिती पोष कृष्ण चतुर्दशी के दिन अपने पाटधर श्रीविजयसेनसूरि को गच्छ की सारणा-वारणा-पडिचोयणा प्रदान अर्थात् गच्छ ऐश्वर्यके साम्राज्य की आज्ञा (अनुमति) दी। इस कार्य के ऊपर इस नगर के लोगोंने बड़ा भारी उत्सव किया। जिस अवसर पर मरु—मालव—मेदपाट—सौराष्ट्र—कच्छ—कोकण आदि देशों से हजारों लोक एकत्रित

हुए थे। श्रीविजयसेनसूरि गच्छ की समस्त अनुज्ञा अर्थात् गच्छ सम्बन्धी समस्त अधिकार प्राप्त करके और भी अधिक शोभायमान हुए। जिस समय हीरविजयसूरिजी ने विजयसेनसूरिको गच्छ संबन्धि अनुज्ञा दी उस समय में हीरविजयसूरिजी ने यही शब्द कहे "हे महानुभाव ! इस गच्छका आधिपत्य और गच्छकी अनुज्ञा के साथ में तेरा संबन्ध हो" और आजन्मपर्यन्त गच्छ को तेरा वियोग कदापि न हो। विजयसेनसूरि के गच्छकी अनुज्ञा को प्राप्त करने के बाद चारित्र के मूल बीज रूप गच्छ की सम्पत्ति दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी।

एक दिवस गच्छ का पूर्ण प्रबन्ध निर्वाह करने में कुशल और सर्व प्रकार के विचार करने में समर्थ अपने शिष्य (आचार्य) को देख करके श्रीहीरविजयसूरि अपने मनो मन्दिर में विचार करने लगे कि यह विजयसेनसूरि यदि मेरेसे पृथक् विहार करे तो बहुत देशों के भव्यों को पवित्र करनेमें भाग्यशाली बन सके और उसकी पदवी का गौरव भी बढ़ सके। इस प्रकार के विचार का निश्चय करके आपने श्रीविजयसेनसूरि को पृथक विहार करने की आज्ञा दी। इस आज्ञारूपी माला को अपने कण्ठ में धारण करके श्रीविजयसेनसूरि विचरने लगे। विचरते २ किसी रोज़ 'चम्पानेर' नगर को इन्हों ने प्राप्त किया। इस नगर में एक 'जयवंत' नाम का श्रेष्ठी रहता था। इसने बहुत द्रव्य का व्यय करके श्रीविजयसेनसूरिके पास सं० १६३२ वैशाख शुक्ल त्रयोदशी के दिन प्रतिष्ठा करवाई।

यहां से विहार करके सूरीश्वर 'सुरतबन्दर' आए। नगर के लोगों ने एक बड़ा प्रवेशोत्सव किया। चातुर्मास यहां ही किया। सूरीश्वर की कीर्ति चारों ओर फैल गई। यहांपर एक 'भूषण'

नाम का पंडित रहता था। उसको सूरि महोदय की यह कीर्ति बड़ी असह्य हुई। एक दिन ऐसाही हुआ कि इस नगर के समस्त श्री-संघ तथा श्रीमिश्र आदि अनेक अन्यमतानुयायी पंडितों की सभा में श्रीविजयसेनसूरि का 'श्रीभूषण' पण्डित के साथ शास्त्रार्थ हुआ। कहना ही क्या है। शेर के सामने शृगाल कहां तक जोर कर सकता है? थोड़े ही प्रश्नोत्तरों में श्रीभूषण, पण्डित, मूक होगए। आचार्य महाराज की विजय हुई। श्रीभूषण पण्डित अनेक जैन पण्डित और ब्राह्मण पण्डितों की सभा में मूर्ख की तरह हँसी के पात्र हुए। श्रावक वर्ग एव नगर के और २ लोगों ने श्रीविजय-सेनसूरि का अधिक सन्मान किया।

अब आप सुरत बन्दर में अनेक प्रकार से जैन धर्म की विजय पताका को फहराते हुए वहा से विहार करके पृथ्वी तलको पावन करते हुए पुन गुजरात के पत्तन नगर में पधारे और चातुर्मास वहा ही किया।

पांचवा प्रकरण।

(श्रीहीरविजयसूरि और अकबरबादशाह का समागम, हीरविजयसूरि के उपदेश से अकबर बादशाह का 'अहिंसा' पर अनुराग होना और अपने राज्य में बारह दिन हिंसा कोई न करे इस प्रकार का फरमान पत्र लिखना इत्यादि।)

इस समय राजा अकबर, जो कि बड़ा प्रसिद्ध मोर होगया, राज्य करता था। इसकी मुख्य राजधानी 'आ

में थी। लेकिन यह राजा अधिकतया ' फतेपुर ' (सिकरी) में रहता था। राजा अकबर का राज्य चारों दिशाओं में फैला हुआ था। यह वही अकबर है जो कि हुमाऊ का पुत्र था। एक समय की वार्ता है कि अनेक राजाओं से नमन कराता हुआ यह अकबर बादशाह धर्माधर्म की परीक्षा करने लगा। जिससे परलोक की सम्पत्ति प्राप्त हो, उस प्रकार का पुण्य जिस मार्ग में हो उस मार्ग की परीक्षा करने में परीक्षक हुआ। इतना ही नहीं, किन्तु प्रत्येक दर्शन के धर्म गुरुओं से मिलना भी इसने आरम्भ किया। राजा अकबर बौद्धादि पांच दर्शनों के धर्म गुरुओं से साक्षात कर चुका, किन्तु अपने २ मतके अभिप्रायों को स्पष्ट रूप से स्थापित करके आत्मा का प्रियमार्ग बतानेवाला इन पांचो दर्शनों के गुरुओं में से किसी को नहीं पाया। जब राजा ने कोइ भी मनोज्ञ मुनिको यथार्थ रूप में नहीं देखा तब उदास होकर चुप बैठा।

एक दिन 'अतिमेतखान' नामक किसी पुरुष से राजाने सुना कि इस जगत् में मनोहर आकृति वाले, सत्यवचन को कहने वाले, महा बुद्धिमान, समस्त शास्त्र के पारगामी ' श्रीहीरविजयसूरि ' नामके मुनीन्द्र हैं। सूर्य की तरह यह भी एक प्रतिभाशाली पुरुष है। इस प्रकार की जब प्रशंसा सुनी तब राजा ने बड़े उत्साह से पूछा कि " वह इस वक्त कहां हैं। " अतिमेतखान ने कहा कि महाराज! वे सूरीश्वर इस वख्त गुजरात देश में भव्यजीवों को मुक्ति मार्ग दिखा रहे हैं'। इस प्रकार निष्कपट बचन सुन करके राजा बहुतही प्रसन्न हुआ। तदनन्तर राजाने श्रीहीरविजयसूरीश्वर को बुलाने के लिए एक पत्र लिख कर अपने *' मेवड़ा ' नामक मनुष्यों के हाथ ' अकमिपुर '* में स्थित *श्रीवखान* नामक शाही के पास भेजा। उन्होंने जाना कि श्रीहीरविजयसूरि इस समय गन्धारवन्दर में हैं।

नाम का पंडित रहता था। उसको सूरि महोदय की यह कीर्ति बड़ी असह्य हुई। एक दिन ऐसाही हुआ कि इस नगर के समस्त श्री संघ तथा श्रीमिश्र आदि अनेक अन्यमतानुयायी पंडितों की सभा में श्रीविजयसेनसूरि का 'श्रीभूषण' परिडत के साथ शास्त्रार्थ हुआ। कहना ही क्या है। शेर के सामने शृगाल कहां तक जोर कर सकता है? थोड़े ही प्रश्नोत्तरों में श्रीभूषण, परिडत, मूक होगए। आचार्य महाराज की विजय हुई। श्रीभूषण परिडत अनेक जैन परिडत और ब्राह्मण परिडतों की सभा में मूर्ख की तरह हँसी के पात्र हुए। श्रावक वर्ग एवं नगर के और २ लोगों ने श्रीविजयसेनसूरि का अधिक सम्मान किया।

अब आप सुरत बन्दर में अनेक प्रकार से जैन धर्म की विजय पताका को फहराते हुए वहां से विहार करके पृथ्वी तलको पावन करते हुए पुनः गुजरात के पत्तन नगर में पधारे और चातुर्मास वहां ही किया।

पांचवा प्रकरण।

(श्रीहीरविजयसूरि और अकबरबादशाह का समागम, हीरविजयसूरि के उपदेश से अकबर बादशाह का 'अहिंसा' पर अनुराग होना और अपने राज्य में बारह दिन हिंसा कोई न करे इस प्रकार का फरमान पत्र लिखना इत्यादि।)

इस समय राजा अकबर, जो कि बड़ा प्रसिद्ध मोगल सम्राट होगया, राज्य करता था। इसकी मुख्य राजधानी 'आग्रा' नगर

में थी। लेकिन यह राजा अधिकतया 'फतेपुर' (सिकरी) में रहता था। राजा अकबर का राज्य चारों दिशाओं में फैला हुआ था। यह वही अकबर है जो कि हुमाऊ का पुत्र था। एक समय की वार्ता है कि अनेक राजाओं से नमन कराता हुआ यह अकबर बादशाह धर्माधर्म की परीक्षा करने लगा। जिससे परलोक की सम्पत्ति प्राप्त हो, उस प्रकार का पुण्य जिस मार्ग में हो उस मार्ग की परीक्षा करने में परीक्षक हुआ। इतना ही नहीं, किन्तु प्रत्येक दर्शन के धर्म गुरुओं से मिलना भी इसने आरम्भ किया। राजा अकबर बौद्धादि पांच दर्शनों के धर्म गुरुओं से साक्षात कर चुका, किन्तु अपने २ मतके अभिप्रायों को स्पष्ट रूप से स्थापित करके आत्मा का प्रियमार्ग बतानेवाला इन पांचों दर्शनों के गुरुओं में से किसी को नहीं पाया। जब राजा ने कोइ भी मनोज्ञ मुनिको यथार्थ रूप में नहीं देखा तब उदास होकर चुप बैठा।

एक दिन 'अतिमेतखान' नामक किसी पुरुष से राजाने सुना कि इस जगत् में मनोहर आकृति वाले, सत्यवचन को कहने वाले, महा बुद्धिमान, समस्त शास्त्र के पारगामी 'श्रीहीरविजयसूरि' नामके मुनीन्द्र हैं। सूर्य की तरह वह भी एक प्रतिभाशाली पुरुष है। इस प्रकार की जब प्रशंसा सुनी तब राजा ने बड़े उत्साह से पूछा कि "वह इस वख्त कहां हैं।" अतिमेतखान ने कहा कि महाराज! वे सूरीश्वर इस वख्त गुजरात देश में भव्यजीवों को मुक्ति मार्ग दिखा रहे हैं'। इस प्रकार निष्कपट वचन सुन करके राजा बहुतही प्रसन्न हुआ। तदनन्तर राजाने श्रीहीरविजयसूरीश्वर को बुलाने के लिए एक पत्र लिख कर अपने 'मेवड़ा' नामक मनुष्यों के हाथ 'अकमिपुर' में स्थित शीयखान नामक शाही के पास भेजा। उन्होंने जाना कि श्रीहीरविजयसूरि इस समय गन्धारबन्दर में हैं।

ऐसा जान करके उन्हीं लोगों को वहाँ भेज दिया। जब यह लोग वहां पहुँचे तो उनके मुखसे राजा अकब्बर का बुलावा सुन कर सूरीश्वरादि सब कोई परमप्रसन्न हुए। राजा का पत्र पढ़ा। और इस के बाद सूरीश्वर ने वहाँ जाने का विचार निश्चय रक्खा।

चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी के दिन शुभ मुहूर्त्त में श्रीसूरीश्वर ने गन्धारबन्दर से विहार किया। स्थान२ में, नगर२ में उत्तमोत्तम महोत्सवपूर्वक राजा-महाराजा-शेठ शाहूकार सभी से परम सन्मानित होते हुए और जिज्ञासुओं को संसार सागर से पार उतरने का मार्ग दिखाते हुए और स्वसमुदाय को ज्ञानाभ्यास कराते हुए, गुजरात, मेवाड़-मालवा आदि देशों में होकर श्रीमुनिराज श्रीफतेपुर (सीकरी), कि जहां अकब्बर बादशाह रहता था, वहाँ पधारे।

सं-१६३९ ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी के रोज प्रातःकाल में सूरीश्वर ने पुर प्रवेश किया। इस प्रवेशोत्सव के समय में लोगो ने बहुत कुछ दान किया। इन लोगों के दानों में 'मेडता' के रहने वाले 'सरदारंग' नामक श्रावक ने जो दान किया वो सबसे बढ़ कर था। नगर प्रवेश के पश्चात् सूरीश्वर ने विचार किया कि—अब पहिले अकब्बर बादशाह से मिलना अच्छा है। राजा को मिलने का समय निश्चय करके सैद्धान्तिक शिरोमणि, वाचक श्रीविमल हर्ष गणि-अष्टावधान शतावधानादि शक्ति धारक वाचक श्रीशान्तिचन्द्रगणि-पंण्डित सहजसागरगणि-पण्डित सिंहविमलगणि—वक्तृत्व कवित्वकलावान् पण्डित हेमविजयगणि-वैयाकरणचूडामणि पण्डित लाभविजयगणि और गुरुप्रधान श्रीधनविजयगणि प्रमुख तेरह मुनि तथा श्रीथानसिंघसा-श्रीमानसिंघसा—कल्याणसा आदि अनेक श्राद्ध वर्ग को साथमें लेकर श्रीहीरविजयसूरीश्वर
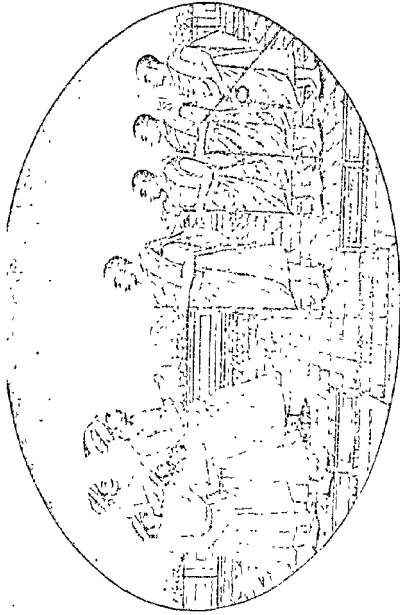
जगद् गुरु श्री हीर विजय सूरि का अकबर बादशाह को धर्मोपदेश देना।

श्रीअकब्बरबादशाह की राजसभा में पधारे। इन विद्वद्गणोंको देखते हुए सारी सभा हर्षित होगई। स्वयं अकब्बरबादशाह ने विनयपूर्वक सामने जाकर के सुस्वागत पूछने के साथ श्रीहीरविजय सूरीश्वर के पादद्वय में नमस्कार किया। इस समय की शोभा को कौन वर्णन कर सकता है? नमस्कार करने के समय में श्रीसूरीश्वरने, सकलसमृद्धि को देने वाली किन्तु यावत् मोक्षफल को देनेवाली 'धर्मलाभ' इस प्रकार की आशिष देकरके राजा को सन्तुष्ट किया। (जैनमुनि लोग किसीको आशिष देते हैं तब 'धर्मलाभोऽस्तु' यही शब्द कहते हैं।)

अकब्बरबादशाह की राजसभा में जिस समय हीरविजयसूरिजी पधारे और जब अकब्बरबादशाह की भेट हुई, उस समय क्या हुआ? इस विषय में जगद्गुरु काव्य के प्रणेता एक श्लोक से कहते हैं कि —

चंगा हो गुरूजीतिवाक्यचतुरो हस्ते निजे तत्करं
कृत्वा सूरिं वरान्निनाय सदनान्तर्वस्त्ररुद्धाङ्गणे।
तावच्छ्री गुरवस्तु पादकमलं नारोपयन्तस्तदा।
वस्त्राणामुपरीति भूमिपतिना पृष्टाः किमेतद् गुरो॥

अकबरने पूछा—'गुरूजी! चंग तो हो?' फिर उनका हाथ पकड़ कर उन्हें महलों के भीतर लेगया। और विछौने पर विठाना चाहा परन्तु सूरीश्वरने वस्त्रासन पर पैर रखने से इनकार किया। इस पर अकबर को आश्चर्य हुआ। और सूरिमहोदय से उसने इसका कारण पूछा। जैन शास्त्रों में इस तरह बिस्तरे पर बैठने की आज्ञा नहीं है, इत्यादि बातें जब अकबरने सुनीं तब उसे और भी आश्चर्य हुआ।

अकब्बरबादशाह के नमस्कार करने के बाद, शेखुजी पाहुडी

और दानीआर नाम के तीन पुत्र एव सभामें आए हुए समस्तलोगों ने भूमि स्पर्श करके नमस्कार किया । समस्त सभा के शान्त होने के बाद 'मेवड़ा' नामके एक पुरुषने सूरीश्वर के आचारादि नियम जैसे कि—नित्य एक ही दफे आहार करना, सूर्य की विद्यमानता ही में विचरना, याचना किए हुए स्थान में निवास करना, एक महीने में कम से कम ६ उपवास अवश्य करना, आठ महीने भूमि पर सोरहना, गरम पानी पीना, इक्का गाड़ी आदि किसी वाहन में न बैठना, इत्यादि बहुत से नियम सुनाये । इस नियमों को सुनते ही लोगों के रोम हर्षित होगये ।

प्रिय पाठक ! क्याही आचार्य की आचारविशुद्धता थी ? शासन के रक्षक, प्रभावशाली और धुरंधर आचार्य होन पर इस प्रकार की उग्र तपस्या करना क्या आश्चर्यजनक नहीं है ? किन्तु यह कहना चाहिये कि उन महात्मा के अंत करण में सम्पूर्ण वैराग्य भरा हुआ था । वह यह नहीं समझते थे कि अब हम आचार्य होगये हैं, अब तो हमे हरजगह शास्त्रार्थ करने पड़ेंगे । वादिओं के साथ वाद विवाद करने पड़ेंगे । इस लिए जीभर के पुष्ट पदार्थ रोज उड़ावें । किन्तु उन महात्मापुरुषों में इस प्रकार के स्वार्थ का लेश भी नहीं था । पाठक ! उनलोगों के रोम२ में वैराग्य भरा हुआ था । वह लोग जो उपदेश देते थे वह सच्चे भाव से देते थे और इसी लिए तो उनलोगों का उपदेश सफल होता था । उन लोगों का ' धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय ' ऐसा सिद्धान्त नहीं था । साथही साथ वह यह भी समझते थे कि यदि हम सच्चे आचार में नहीं रहेंगे । यदि हम जैसा उपदेश देते हैं वैसा बर्ताव नहीं करेंगे तो हमारी सतति कैसे सुधरेगी ? हमारी सतति पर कैसे अच्छा प्रभाव पड सकता है ?

इसके उपरान्त राजा और सूरीश्वर दोनों सभापति एकान्त स्थान में विचार करने को बैठे। इस अवस्थामें स्थिर बुद्धि होकर राजा ने श्रीहीरविजय सूरीश्वर से 'ईश्वर का स्वरूप' पूछा। सूरीश्वरने भी बड़ी गंभीरता के साथ परमात्मा का स्वरूप, जिस तरह सिद्धसेनदिवाकर-कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य प्रभु आदि पूर्वाचार्यों ने वर्णन किया है उसके अनुसार आपने भी कथन कहकर राजा को समझाया। इस विवेचन को आदर पूर्वक सुनता हुआ राजा अत्यन्त तुष्टमान-प्रसन्न हुआ। इसके पश्चात् राजा ने अपने राज्य में रक्खे हुए जैनागम, (अंगोपांग-मूलसूत्रादि) तथा भागवत—महाभारत-पुराण-रामायणादि जो शैवशास्त्र थे वह सब श्रीसूरीश्वर को दिखलाए। और विनय पूर्वक कहा कि—"यह सब पुस्तकें आप ग्रहण करिये"। इस प्रकार के वाक्य कह कर वह ग्रंथ सूरीश्वर को भेट करने लगा। राजा का बहुत आग्रह होने पर भी सूरिजी ने स्वीकार नहीं किये। तब राजाने त्याग किये हुए पुस्तकों में भी मुनिराज का निर्ममत्व देखकर अपने मनमें विचारा कि "अहो! यह मुनिमतंगज पुस्तक को भी ग्रहण नहीं करते हैं तो मै जो धन-काञ्चन देने को विचार कर रहा हूँ उन सब पदार्थों को यह कैसे ग्रहण करेंगे।" जब पुस्तक सूरीश्वर ने नहीं ग्रहणकी तब सब पुस्तकें अलग रखवादीं अर्थात् राजा खुद इनसे मुक्त होगया। वह सब पुस्तकें 'अकब्बर बादशाह' के नाम से आग्रा के एक भंडार में भेज दी गई।

राजाने बड़े समारोह के साथ सूरीश्वर को उपाश्रय में पहुँचाया। जब शाहीमन्दिर से विदा होकर मुनीपुङ्गव राजद्वार प्रतोली में होते हुए चलने लगे, उस समय की शोभा को देख करके आस्तिक लोग मन में कहने लगे, क्या आज महावीर जगम राशी

से 'भस्म' नामका दुर्ग्रह उतरा है ? । इस समय में राजा ने अनेक याचकों को दान दिये । और गीत—वादित्र की भी सीमा नहीं रक्खी ।

कुछ काल ' फतेपुर ' में ही रह करके वहां से विहार कर सूरीश्वर आगरा पधारे । आगरा बादशाह की राजधानी थी । चातुर्मास आपने आग्रे में ही किया । अकबर बादशाहने अपनी सभा में इन शब्दों में सूरीश्वर की प्रशंसा की कि " धर्मकर्त्तव्य रूप क्रिया में और सत्य भाषण करने में तत्पर ऐसे किसी अन्य मुनि को मैंने आज तक नहीं देखा है " आग्रे में रहे हुए गुरु महाराज की अद्भुत महिमा को सुन करके राजा अतीव हर्षित हुआ । उसने पर्युषण पर्व के दिवसों में अपने राज्य में डुग्गी पिटवाकर यह आज्ञा प्रचारित करा दी कि प्रजा का कोई मनुष्य जीव हिंसा न करे ।

चातुर्मास समाप्त होनेपर कुशावर्त्त देशमें पधारकर 'शौर्यपुर' नगर में श्रीसूरिजी नेमीश्वर की यात्रा करने को चले । यात्रा करके पुनः आगरे में पधारे । यहां पर आपने श्री चिंतामणिपार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की । तदन्तर यहां से विहार करके पुनः फतेपुर (सिकरी) पधारे । जहां कि अकबर बादशाह रहता था ।

गुरू महाराज का अपने नगर में आगमन सुन करके बादशाह अकबर बड़ा हर्षित हुआ और उसने मिलने की अभिलाषा प्रगट की । सूरीश्वर भी पुनः राजाको धर्मोपदेश देने को उत्सुक हुए । अब राजाने सूरीश्वर को बुलाने के लिये आदमी भेजे तब सामान्य मुनियों को उपाश्रय में ही रख करके केवल सात विद्वानों को साथ में लेकर मुनिराज राज दरबार में पधारे । इस समय सूरीश्वर ने बहुत प्रसन्न होकर राजा को उपदेश दिया । इस उपदेश का यहां

तक प्रभाव पड़ा कि-राजाने अपने राज्य में बारह दिन तक (श्रावण वदी १० से भादों सुदी ६ तक) समस्त जीवों को अभयदान देने का फरमान पत्र लिख दिया और इस फरमान पत्र का प्रचार अपने कर्मचारियों से सारे राज्य में करा दिया।

अकबर के इस फरमान का अनुवाद मालकम साहब ने अपनी पुस्तक में दिया है। हम ज्यों का त्यों प्रकाशित करते हैं.—

"IN THE NAME OF GOD GOD IS GREAT

" FIRMAN OF THE EMPEROR JALALODEN MAHOMED AKBAR SHAH, PADSHA, GHAZEE

" Be it known to the Moottasuddies of Malwa, that as the whole of our desires consist in the performance of good actions, and our virtuous intentions are constantly directed to one object that of delighting and gaining the hearts of our subjects, etc

" We on hearing mention made of persons of any religion or faith, whatever, who pass their lives in sanctity, employ their time in spiritual devotion, and are alone intent on the contemplation of the Deity, shut our eyes on the external forms of their worship, and considering only the intention of their hearts, we feel a powerful inclination to admit them to our association, from a wish to do what may be acceptable to the Deity. On this account, having heard of the extraordinary holiness and of the severe penances performed by Hirbuj soor and his disciples, who reside in Guzerat, and are lately come from thence, we have ordered them to the presence, and they have been ennobled by having permission to kiss the abode of honour

" After having received their dismissal and leave to proceed to their own country, they made the

following request. — That if the King, protector of the poor, would issue orders that during the twelve days of the month Bhodon, called Putchoossur [which are held by the Jains to be *particularly holy*], *no cattle should be slaughtered in the cities* where their tribe reside they would thereby be exalted in the eyes of the world, the lives of a number of living animals would be spared and the actions of His Majesty would be acceptable to God, and as the persons who made this request come from a distance, and their wishes were not at variance with the ordinances of our religion but on the contrary were similar in effect with those good works prescribed by the venerable and holy Mussalman, we consented, and gave orders that during those twelve days called Putchoossur, no animal should be slaughtered

' The present Sunnud is *to endure for ever* and all *are enjoined to obey it*, and use their endeavours *that no one is molested in the performance of his religious ceremonies*

Dated the 7th, Jumad ul Sani, 992, Hyjrah

इसके उपरान्त सूरीश्वर के उपदेशसे कारागार से कैदी लोगों को छोड़ दिया। तथा दृढ़ पञ्जर से पक्षी समूहों को भी छोड़ दिया। राजा ने सूरीश्वर के सामने यह भी कहा कि इस भूमि में जहां तक मेरा आधिपत्य है वहांतक कोई पुरुष मीन मकरादि जलचर प्राणियों को भी नहीं मारेगा। यह कहकर राजा ने 'सीकरी' के पास 'डाबर' नामका सरोवर जो कि तीन योजन प्रमाण का था, वह करवाया। इस सरोवर से राजा को बहुत द्रव्य की आमदनी होती थी।

उपर्युक्त बारह दिनके सिवाय 'नवरोज का दिन '-' रविवार का दिन ' ' फरवरदिन महिने के पहिले अठारह दिन ' ' अबोज महिना सारा ' इत्यादि दिनों में भी कोई हिंसा न करे, ऐसा फरमान पत्र अपने राज्यमें प्रचार किया था। तथा इस समयमें राजा ने श्रीहीरविजयसूरिजी को ' जगद्गुरु ' एसी उपाधि दी थी। यह सब बातें ग्रन्थान्तरों से ज्ञात होती हैं।

इस प्रकार बहुत से कार्यो को कराते हुए श्रीसूरीश्वर ने इस साल का चातुर्मास फतेपुर में ही किया। यहांपर चातुर्मास करने से बादशाह को भी बहुत कुछ लाभ की प्राप्ति हुई।

छठवां प्रकरण।

(विजयसेनसूरि व उनके शिष्यका खरतरगच्छ वालों से शास्त्रार्थ, खरतरगच्छ वालों का पराजय होना और राजा खानखान से विजयसेनसूरिकी मुलाकात—इत्यादि)

इस शास्त्रार्थ में खरतरगच्छ वालों की जब दाल न गली तब अहमदाबाद आकर के कल्याणराज नामक एक नृपाधिकारी का आश्रय लेकर खरतरगच्छ वालों ने श्रीविजयसेनसूरि के एक शिष्य के साथ में बड़ा भारी विवाद उठाया । यह विवाद भी 'खान खान' नामक महाराजेन्द्र की सभा में सामन्तादिक राजलोक तथा नगर के बड़े २ लोगों के सामने हुआ । इस विवाद में भी अनेक शास्त्रों में प्रवीण, बुद्धिमान और तेजस्वी शिष्य ने कल्याणराज का और औष्ट्रिक मतके अनुयायी संघ का विभ्रम दूर करादिया । इस प्रकार जय को प्राप्त करने वाले मुनि का बड़ा सत्कार किया और बड़ा जयध्वनि के साथ सब शास्त्र धूम धाम से अपने स्थान पर लाए गए । जैसे जल में तेलका बिंदु फैल जाता है, वसी तरह यह जय ध्वनि चारों ओर फैल गई । रवि के उदयसे कोक पक्षी तो आनंदित होता है । किन्तु उलूक को तो अप्रीति ही होती है । एव रीत्या इस जैन शासन की उन्नति से तपगच्छीय श्रीसंघ को तो बड़ा आनंद हुआ किन्तु अन्य कुतीर्थियों को बड़ाही हार्दिक कष्ट हुआ । इस जय ध्वनिने जब हमारे श्रीविजयसेनसूरीश्वर के कर्ण में प्रवेश किया, तब इस सूरीश्वर का अन्तःकरण बड़ाही प्रसन्न हुवा । आपने शीघ्र अहमदाबाद आने का विचार किया और पत्तननगर से विहार करके लोगों को उपदेश देते हुए आप थोड़ही दिनों में अहमदाबाद पधारे ।

आपके आगमन से नगरके समस्त लोग आनंदित हुए । लोगों ने शहर के सम्पूर्ण मार्ग में अच्छी २ सजावटें कीं । बड़ी धूमधाम के साथ सूरीश्वर का प्रवेशोत्सव किया । इस प्रवेशोत्सव में राजा ने भी हाथी, घोड़े, रथ आदि बहुतसी सामग्री सामिल की । इस अभूतपूर्व वरघोड़े के साथ श्रीविजयसेनसूरीश्वर ने नगर का स-

मस्त लोगों को दर्शन देते हुए उपाश्रय को अलंकृत किया। श्राद्ध वर्ग की स्त्रियों ने सुवर्ण की चौकियों पर हीरा माणिक, मोती इत्यादि के साथीए और नंदावर्त बनाकरके बड़ी श्रद्धा से सूरीश्वर की पूजा की। श्राद्ध वर्ग ने अतुल द्रव्य का व्यय करके ज्ञान पूजा प्रभावना इत्यादि किए। श्रीसंघ में स्वामी वात्सल्य होने लगे। सूरीश्वर की धर्मदेशना से हजारों लोग कर्मक्षय करने लगे और सूरीश्वर के प्रताप से इनकी कीर्ति भी चारों ओर फैलगई।

इस कीर्ति को सुन कर श्रीखानखान राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और श्रीसूरीश्वरमहाराज के दर्शन करने की उसकी प्रबल इच्छा हुई। उसने आदर सत्कार के साथ अपने सेवकों को भेज कर सूरीश्वर को राजसभा में बुलाये। सूरीश्वर भी अपने विद्वान् शिष्यों को साथ लेकर सभा में पधारे। वहां जाकर सूरिजीने समयोचित श्रीसर्वज्ञभाषित धर्मप्रकाश किया। इस धर्मोपदेश को सुनते ही सारी सभा प्रसन्न होगई। और धर्मोपदेश को सुनकर राजा को यही कहना पड़ा कि "इस कलियुग में यदि कोई धर्म मार्ग प्रशस्य है तो यही मार्ग है जो श्रीसूरीश्वरजीने प्रकाश किया है"। राजा के मुखारविंद से इस प्रकार के वचन निकलने से श्रीसूरीश्वर की महिमा की कोई सीमा ही नरही। राजा के अत्याग्रह से सूरीश्वर ने इस सालका चातुर्मास इस राजनगर में ही किया। इससे राजा के मन में बहुत ही गौरव उत्पन्न हुआ।

सातवाँ प्रकरण ।

(श्रीविजयदेवसूरि का जन्म, दीक्षा, विजयसेनसूरि की कीहुई प्रतिष्ठायें तथा हीरविजयसूरि और विजयसेन सूरि का समागम ।)

राजदेश नामक देशके भूषण समान ' इलादुर्ग ' (इडर) नामकी नगरी में एक ' थिरा ' नामका श्रेष्ठी रहता था । इस श्रेष्ठी की एक 'रुपाई' नामकी भार्या थी जो बड़ी सुशीला एवं पतिव्रता थी। इस पतिप्राणा अबला के गर्भ से सं० १६३४मिती पौषशुक्ला त्रयोदशी के दिन एक प्रतिभाशाली और उत्तमगुण सम्पन्न बालक का ज म हुआ । माता पिता ने बड़े समारोह के साथ इस बालक का नाम ' वास ' रक्खा । बालक क्रमश बालपन को त्याग करके जब बड़ा हुआ तब एक दिन उसके पिता का अनशनादि करके सुसमाधिपूर्वक देहान्त होगया ।

पिता के देहान्त होजाने के बाद इस वैराग्यवान् बालक ने अपनी माता से कहा —मैं शिवसुख की देनेवाली दीक्षा को ग्रहण करने की उत्कट इच्छा रखता हू, अतएव आप मुझे आज्ञा दीजिए । ' पुत्र के इस दृढ़ता के वचनों को सुन करके माता ने यह कहा कि " हे नन्दन ! मैं भी तेरे साथ में वही मोक्षसुख को देनेवाली दीक्षा ग्रहण करू गी । अपने को अनुमति दने के साथ स्वय माता का दीक्षा लेन का विचार सुनकर पुत्र और भी अधिक आनन्दित हुआ । माता ने यही विचारा कि जैसे रत्न जो होता है वह सुवर्ण के साथ ही में शोभा को धारण कर सकता है । वैसे यह मेरा पुत्र भी जब गुरू की सेवा में रहेगा तब ही योग्यता को प्राप्त करेगा '. बस ! यही विचार का निश्चय करके माता अपने पुत्र के साथ इलादुर्ग (इडर) से चलकर

अहमदाबाद को गई जहां कि श्रीविजयसेनसूरि विराजते थे। इस पुत्र की 'सौम्याकृति' और विस्तीर्णलोचन आदि उत्तम चिन्हों को देख कर सूरीश्वर ने मन में विचार किया कि यह बालक भविष्य में समस्त संघ को संतोष करने वाला होगा। जब सूरीश्वर ने यह भी सुना कि माता के साथ में यह बालक भी दीक्षा लेने वाला है, तब तो कहना ही क्या था! सारे संघ में आनन्द२ फैलगया। इसके बाद सूरीश्वर ने शुभमुहूर्त में सं-१६४३ मिती माघ शुक्ल दशमी के दिन माता और पुत्र दोनों को दीक्षा दी। सूरीश्वर ने इस दीक्षित मुनिका नाम 'विद्या-विजय' रक्खा।

पाठक इस बातका विचार कर सकते हैं कि इस नववर्ष के बा-लक के अन्तः करण में दीक्षा लेने का विचार होना और माता का आज्ञा देना कैसी आश्चर्य की बात है? क्या यह बातें सिवाय पूर्व जन्म के संस्कार के हो सकती है? कभी नहीं!

छोटी ही अवस्था में मुनि विद्या विजयने निष्कपट होकर, बड़े विनय पूर्वक गुरु महाराज से विद्याभ्यास कर लिया। दीक्षा हो जाने के बाद यहां पर एक 'आहिदे' नाम की श्राविका रहती थी। उस के घरमें फाल्गुन शुक्ल एकादशी के रोज सूरीश्वर नें जिनबिंब की प्र-तिष्ठा की। इस समय में गन्धारबन्दर से 'इन्द्रजी' नाम के शेठ आचार्य को वन्दना करने को आये थे। इन्होंने सूरिजी से विनति की कि-'श्रीमहावीरस्वामी की प्रतिष्ठा करवा करके मै अपने जन्म को सफल करना चाहता हूं। अतएव आप अपने चरण कमल से गन्धार बन्दर को पवित्र करिए'। इस विनति को स्वीकार करके अहमदाबाद से विहार करके श्रीविजयसेनसूरि गन्धारबन्दर में पधारे। यहां पर पधार करके आपने दो प्रतिष्ठाएं की। एक सं० १६४३ मिती ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन 'इन्द्रजी' शेठ के घर में

महावीर स्वामी की और दूसरी ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी के दिन 'धनाई' नाम की श्राविका के मन्दिर में। सूरीश्वर ने चातुर्मास स्तम्भ तीर्थही में किया।

अब इधर श्रीहीरविजयसूरीश्वर ने अनुक्रम से आग्रा फतेपुर-अभिरामाबाद और आग्रा इस तरह चार चातुर्मास करके इधर मरु देशको पवित्र करते हुए 'फलोधी' तीर्थ की यात्रा करके श्री नागपुरमें पधारे। और वहाँ ही चातुर्मास किया। चातुर्मास समाप्त होने के बाद श्रीसूरीश्वरने गुजरात जाने का विचार किया। जब गुजरात में विचरते हुए श्रीविजयसेनसूरिजी ने यह बात सुनी कि गुरु वर्य गुजरात पधारते हैं तब वह अत्यन्त खुश हुए और गुरु वर्य के सामने जाने को प्रस्तुत हुए। श्रीविजयसेनसूरि आदि मुनीश्वरों ने 'शिरोही' आकरके श्रीहीरविजय सूरिजी के दर्शन करके अपनी आत्मा को कृतार्थ किया। सिरोही में यह दोनों धुरंधर आचार्यों के पधारने से लोगों को बहुतही लाभ हुआ। कुछ काल शिरोही में गुरु वर्यकी सेवा में रह करके बाद गुरुआज्ञा रूप माला को कण्ठ में धारण करके श्रीविजयसेनसूरीश्वर ने शिरोहीसे विहार किया। और पृथ्वीतल को पावन करते हुए आप वजीआराजी नामक श्राद्ध के वहाँ अर्हत् प्रतिष्ठा करने के लिये स्तम्भतीर्थ पधारे।

गन्धार बन्दर में 'आलहण' नामक श्रेष्ठी के कुल में 'वजीआ' तथा 'राजीआ' नामक दो भाइ बड़े धर्मात्मा रहते थे। यह दोनों प्रेमी बन्धु गन्धार बन्दर से खंभात गये। एक दिवस दैववसात् इन दोनों भाइओं ने खंभात में आ करके देव भक्ति—गुरु भक्ति-स्वामि वात्सल्य--तथा अन्य प्रकार के दान करके बहुत द्रव्यका व्यय किया। यहां पर इन लोगोंने ऐसे उत्तमोत्तम कार्य किये कि जिससे इन दोनों की कीर्ति देश—देशान्तरों में फैल गई।

जिसका सविस्तर वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। इसके अनन्तर राजा अकबरबादशाह की राज सभा में और फरँग के राजा की राजसभा में भी इनके गुणगान होने लगे। इन दोनों महानुभावों ने धर्म—अर्थ—काम इन तीनों पुरुषार्थों को अपने आधीन कर लिया।

एक रोज निष्पाप—निष्कपट स्वभाव युक्त यह दोनों भाइ आपस में विचार करने लगे कि—अपने द्रव्य से देव-गुरु कृपा से सब कुछ कार्य हुए। अब जिन भवनमें जिन बिंबकी प्रतिष्ठा करानी चाहिये। क्योंकि जिन भवन में जिनप्रतिमा को स्थापन कराने से जो फल उत्पन्न होता है उस पुण्यरूपी पुष्प से मुक्ति का सुख मिलता है। यह विचार करके जिनबिंब की प्रतिष्ठा कराने के लिये एक बड़े भारी उत्सव और बड़ी धूमधाम के साथ सं० १६४५ मिति ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन उत्तम मुहूर्त में श्रीविजनसेनसूरीश्वर के हाथ से श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथ तथा श्रीमहावीर स्वामी की प्रतिष्ठा करवाई। सप्तफणिधर इस चिंतामणि पार्श्वनाथकी प्रतिमा ४१ अंगुल की रक्खी। इस प्रतिमा का चमत्कार चारों ओर फैलने लगा। क्यों कि प्रत्येक पुरुष की मनोकामना इस प्रतिमा के प्रभाव से पूरी होती थी। इसके पश्चात् यहां पर इन दोनों महानुभावोंने एक पार्श्वनाथ प्रभुका मंदिर भी बनवाया। इस मंदिर में बारह स्तंभ, छद्वार और सात देवकुलिका स्थापितकी गई। इस मंदिर में सब मिला करके २५ जिन बिंब स्थापन कर वाये। सब से बढ़ कर बात तो यह हुइ कि इस मंदिर में चढ़ने—उतरने की २५ तो शिढ़ीआँ रखवाई थीं! मूल प्रतिहारमें एक बाजू में ३७ आंगुल प्रमाण वाली श्रीआदीश्वर भगवानकी प्रतिमा और दूसरी बाजू में ३९अंगुल प्रमाण वाली। श्रीमहावीर स्वामी की प्रतिमा विराजमान

की गई। इस प्रकार इस मनोहर-रम्य मंदिर में श्रीजिनेश्वरों की श्रीविजय सेनसूरीश्वरने प्रतिष्ठा की।

आठवां प्रकरण।

(अकबर बादशाह का श्रीशत्रुंजयतीर्थ करमोचन पूर्वक फरमान पत्र देना। श्रीविजयसेनसूरि को बुलाना। श्रीविजयसेनसूरि का लाहौर प्रति गमनमार्गमें अनेक राजाओंसे सम्मानित होना और सुखशाति से लाहोर पहुचना। इत्यादि)

अब श्रीविजयसेनसूरि गन्धार बन्दर से विहार करके अपने गुरु श्रीहीरविजयसूरि जी के पास आए। इन दोनों आचार्यों ने स० १६४६ की साल का चातुर्मास राजधन्यपुर (राधनपुर) में किया। यहापर एक दिन श्रीहीरविजयसूरि जी के पास लाहोर से अकबर बादशाह का पत्र आया। उसमें उन्हों ने यह लिख भेजा कि -" अबसे इस तीर्थ का कर मेरे राज्य में कोई नहीं लेगा। इस प्रकार का मैंने निश्चय किया है। अब आपका पवित्र शत्रुंजयतीर्थ आपको कर मोचन पूर्वक देने में आता है "। इस तरह लिखकर, साथही साथ यह भी राजा ने लिखा कि-" आप मेरे ऊपर कृपा करके अपने पट्टधर को यहापर भेजिये। क्योंकि जब मैंने पहिले आपके दर्शन किए तब से मैं पुण्य से पवित्र हुआ हू। अब आप कृपा करके अपना कोई विद्वान् शिष्य मेरे पास भेजिये " इस पत्र को पढ़कर बड़ विचार पूर्वक आपने श्रीविजयसेनसूरिजी से कहा

कि " हेस्वच्छात्मन् ! अकबर बादशाह को मिलने के लिये तू जा । इस राजा की भूमि में स्थिति को फैलाते हुए हम लोगों को उनकी आज्ञा शुभ फलकी देने वाली है । " इस वचनों को सुनतेही श्रीविजयसेनसूरि ने कहा ' जैसी पूज्य की आज्ञा ! '। बस ! आपने अकबर बादशाह के पास जाने का विचार निश्चय किया। और स० १६४६ मार्गशिर्ष शुक्ल तृतीया को शुभ मुहूर्त में श्रीहीरविजयसूरि जी को नमस्कार करके आपने लाभपुर (लाहौर) के प्रति प्रयाण भी किया।

मार्ग में चलते हुए पहिले आप पतन (पाटण) पधारे : यहां पर श्रावक लोगों ने बड़ा उत्सव किया। यहां के सब मंदिरों के द-र्शन करके क्रमश-देलवाड़ा आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए 'शि वपुरी' पधारे। यहांपर ' सुरत्राण ' नामक राजा रहता था । सू-रीश्वर का आगमन सुनकर राजा ने अपनी 'शिरोही' नगरी बहुत ही शुशोभित की। और बड़ी भक्तिके साथ दो कोश तक अगमानी करने गया। राजा ने सूरीश्वर का बड़े सत्कार के साथ पुर प्रवेश करवाया। यहां पर कुछ दिन स्थिरता करके सूरि जी आगे बढ़े। क्रमशः विचरते हुए और भव्य जीवों को उपदेश देते हुए ' श्रीना-रदपुरी ' (जोकि अपनी जन्म भूमि थी) में पधारे। चाहे जैसे म-नुष्य हो और चाहे जैसा जन्म भूमि वाला ग्राम हो, जन्म भूमि में जाने से सबको आनंद होता है। क्योंकि'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गा दपि गरीयसी' यह लोकोक्ति संसार में प्रचलित है । सूरिजी को भी यहा आने से बहुत आनंद हुआ । यहांपर सूरिजीने पूर्वावस्था के संम्बन्धि समूह के आग्रह से कुछ समय निवास किया । यहां के लोगों ने बहुत द्रव्य खरचा करके सूरिजी के उपदेश से शासन की प्रभावना की। यहां से विहार करके आप मेदिनीपुर (मेडता)

पधारे । यहां के राजा ने भी सूरिजी का बड़ा सत्कार किया । यहां से वैराट नगर-महिम नगर आदि नगरों में होते हुए और धर्मोपदेश देते हुए लाहौर से ६ कोश दूर 'लुधियाना' में पधारे । यह समाचार लाहौर में प्रसिद्ध होगया कि श्रीविजयसेनसूरिजी लोधियाना पधारे हैं, तब श्रीअकबर बादशाह के मंत्रियों का अधिपति 'शेख' का भाई 'फयजी' (जोकि दशहजार सेनाका सेनाधिपति था) वह और अनेक लोग गुरु महाराज के दर्शन करने को वहांपर जा पहुंचे । यहांपर समस्त लोगों के सामने फयजी—सेनाधिपति के आग्रह से गुरु महराज के शिष्य श्रीनन्दिविजय नाम के मुनि ने अष्टावधान साधन किए । इस चमत्कार को देख करके सब लोग चकित होगए । इस चमत्कार से चमत्कृत होता हुआ शेख का भाई फयजी अकबर बादशाह के सामने जाकर कहने लगा " हे राजेश्वर ! श्रीहीरविजयसूरि लाभपुर में पधारते हैं । अब थोड़ीही दूर हैं । यह सूरिजी भी गुणों के एक मात्र भण्डारही हैं इनके शिष्य भी बड़ी २ कलाओं को जानने वाले हैं । इन महात्माओं में नन्दिविजय नामके मुनि अद्भुत हैं ।

इस प्रकार की तारीफ को सुनतेही राजा मुनिजी के दर्शन करने को उत्सुक हुआ । सूरीश्वर ने अपनी शिष्यमण्डली के साथ आते हुए 'पञ्चकोशी' वनको प्राप्त किया । जहां की राजा का महल था । यहां पहिले पण्डित सुरचंद्रगणिके शिष्य श्रीभानुचन्द्र नामके उपाध्यायको श्रीहीरविजयसूरिने राजाके साथमें धर्म गोष्ठी के लिये बैठाया । इस पञ्चकोशी वनमें भानुचन्द्र उपाध्याय सामने आए । राजाने अपने नगर निवासियों के साथ हाथी, घोड़े, पयदल आदि सेना और अपने मंत्री वर्गको भी भेजकर सूरीश्वरका बहुत सत्कार किया । इस धूमधाम के साथ सूरिजीने लाहौर शहरके पास

एक 'गंज' नामक शाखापुर में निवास किया। इसके पश्चात् अष्टावधानी को देखने की इच्छा से राजाने सुरीश्वर के शिष्यों को अपनी पास बुलाए। गुरु महाराज की आज्ञानुसार श्रीनन्दिविजयादि साधु राजा की राजसभा में गये। इस सभामें श्रीनन्दिविजय मुनिने आश्चर्यकारी—अद्भुत अष्टावधान को साधन किये। इस चमत्कारी विद्या को देख करके सब लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लगे, यहां तक कि स्वयं बादशाह भी अपने मुख को न रोक सका।

इसके बाद ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन राजा ने बड़े उत्सव के साथ श्रीसूरीश्वर को नगर प्रवेश करवाया। राजा ने हमारे सूरीश्वर को 'अबजलफजल' नामक प्रसिद्ध नियोगी के मकान में निवास करवाया। इसके बाद राजा ने श्रीसूरीश्वर को अपनी बैठक में बुलाने के लिये अपने मंत्रियों को भेजा। सूरीश्वर अपना गौरव और धर्म का गौरव समझ करके राजा के मकान में पधारे। राजा ने बड़ी नम्रता के साथ श्रीसूरिजी से पूछा कि " हे गुरवः! आपके शरीर में और आपके शिष्य मण्डल में अच्छी तरह कुशल मंगल सुख शान्ति है? हे महाराज! श्रीहीरविजयसूरि जी कौन देश में? कौन नगर में विद्यमान है। वे भी सुख शान्ति से जगत् का उद्धार करने में कटिबद्ध हैं? वे महात्मा जी वर्तमान कौन२ कार्य में प्रवृत्त है? कृपाकर मुझे सब हाल सुनाइये।

तदनन्तर सूरिजी ने बड़े मधुर स्वरसे कहा:-हे राजन्! आपके अनुभाव से भूवलय में रहते हुए हमें सब प्रकार से सुख शान्ति प्राप्त है। हे महानुभाव! इस जगत में आपके शासनकाल में समस्त प्रकार के भय नष्ट हुए हैं। अतएव आपके प्रभाव से सबको शान्ति प्राप्त है। सूरि पुङ्गव, गुरुवर्य श्रीहीरविजयसूरीश्वर जी व-

र्तमान समय में गुजरात देश में विराजते हैं। वे दयालु महाराज ज्ञान-ध्यान-तप-जप और समाधि से श्रीपरमेश्वर की उपासना करते हैं। हे राजेश्वर ! आपकी समस्त धर्मानुयाइयों के ऊपर प्रिय दृष्टि को देखकर तथा आपका समस्त स्थानों में आधिपत्य जानकर श्रीहीरविजयसूरि जी महाराज ने आप को 'धर्मलाभ' रूप आशिष दी है। हे भूपाल ! सकल धर्म की माता ' दया ' है। समस्त पुण्यों में मुनिओं के मनकी करुणाही अभीष्ट है। अतएव समस्त धर्माचरण में ' दया ' का ही प्रधान्य है। हे राजन् ! इस प्रकार की कृपा-दया ने वर्तमान समय में समस्त जगत् को व्याप्त किया है। हे भूप ! यह आपकी बहु व्यापक ' दया ' से " गुरुवर्य बहुत प्रसन्न हैं। वे गुरुवर्य जी स्वयं भी दयाके भण्डार हैं । आपकी दया उनको अभिलषित है। जिस प्रकार धर्म का मूल दया है उसी प्रकार दयाके मूल आप हैं। आपका ऐसा महत्व विचारकर सूरीश्वर जी आपके कल्याणाभिलाषी हैं अर्थात् आपके ऐसे धर्मात्मा राजा का कल्याण हो यही हमारे गुरुवर्य की मनो कामना है।

इन वचनों को सुनती हुई सारी सभा अतीव हर्षित होगई। और सब अपने अंतःकरण में यही विचार करने लगे कि-अहो ! इस चतुर पुरुष का कैसा वचन चातुर्य है ? ।

इसके पश्चात् राजाने कहा कि-' हे सूरीश्वर ! आज की सभा की यह इच्छा है कि-श्रीनन्दिविजय मुनीश्वर पहिले दिखाए हुए अष्टावधान को साधन करें, तो बहुत अच्छी बात है '। सूरिजी ने शीघ्र अपने शिष्य को आज्ञा दी। नन्दिविजय मुनिने अष्टावधान साधन किये। इस चमत्कारक विद्या से सारी सभा और राजा प्रसन्न होगए। और सम्पूर्ण सभा के सामने इस मुनि वरको 'खु-

शफहम ' शब्दका विशेषण देकर उनकी अत्यंन्त प्रशंसा की। इस समय राजा की अनेक सामग्री के साथ लोगों ने बड़ा उत्सव किया। एवं रीत्या राजसभा में बड़े सन्मान को प्राप्त करके श्री-विजयसेनसूरि अपने शिष्य मण्डल के साथ उपाश्रय में पधारे। श्राद्ध वर्ग ने आज से एक अठाइ महोत्सव प्रारम्भ किया। इस अपूर्व शासन प्रभावना को देखकर अन्यदर्शनी लोग जैनों का एक छत्र राज्य मानने लगे।

नववां प्रकरण।

(ब्राह्मणों के कहने से राजाका भ्रमित होना, श्रीविजय-सेनसूरिके उपदेशसे राजा का भ्रम दूर होना। 'ईश्वर'का सत्यस्वरूप प्रकाश करना और सूरिजी के उपदेशसे बड़े २ कु कार्योंका बन्द करना)

इस प्रकार सूरिजी का और राजा का प्रगाढ़ प्रेम दिन परदिन बढ़ने लगा। सूरिजी की महिमा भी बढ़ने लगी। इस जैन धर्मकी महिमा को नहीं सहन करने वाला एक ब्राह्मण एक दिन राजा के पास जा कर बोला:—

"हे महाराज, ये जैन लोग, पाप पुञ्ज को हरण करने वाला-जगत् को बनाने वाला-निरंजन—निराकार—निष्पाप-निष्परिग्रह आदि गुण विशिष्ट 'ईश्वर' को मानते नहीं है। और जब वे लोग ईश्वरही को नहीं मानते हैं तो फिर उन का धर्म मार्ग वृथा ही है। क्योंकि जगदीश्वर की सत्तारहित होकर ये लोग जो कुछ

सुकृता चरण करते हैं वह सब निष्फल ही है। अतएव आप जैसे राजराजेश्वर के लिये जैनों का मार्ग कल्याकारी नहीं है।"

बस! ब्राह्मण देवताके इस वचन से ही राजा को बड़ा क्रोध हुआ। एक दिन सूरीश्वर राज सभामें आए तब राजाने क्रोधको अपने अन्त करण में रक्खा और ऊपर से शान्ति रख करके सूरीश्वरसे कहा "हे सूरिजी लोग कहते हैं कि ये आपकी जो क्रियायेंहैं वे सब लोगों को प्रत्यय कराने वालीहैं। मनशुद्धि को करने वाली नहीं हैं। अतएव इसके निमित्त स समस्त प्राणिओं को ठगने वाले ये महात्मा हैं। क्योंकि ईश्वर को तो मानते नहीं है।' हे गुरु वर्य! इस प्रकारकी मेरे मनकी शंका आप के वचनामृत से नाश होनी चाहिये।"

बादशाह का यह वचन सुनते ही सूरीश्वर समझ गए कि—राजाकी स्वयं यह कोपाग्नि नहीं है, किन्तु ब्रह्म देवता की यह फैलाई हुई माया है। अस्तु। सूरीश्वर ने राजा से कहा—हे राजन्! हमलोग जिस प्रकार से ईश्वर का स्वरूप मानते हैं, उस प्रकार से और किसी मतमें ईश्वर का स्वरूप देखा नहीं जाताहै। जरा सावधान हो करके आप सुनिए। जिस ईश्वर के हर्ष-पीयूष से भरपूर नेत्र शान्त रसाधिक्य को छोड़ते नहीं हैं। जिस का वदन, समस्त जगत् को परमप्रमोद रूप—सम्पत्तिको देता है। जो प्रभु अश्व—मेष मयूरादि किसि वाहन पर बैठते नहीं हे। जिस को मित्र पुत्र कलत्रादि कोइ भी परिग्रह नहीं है। जिस ईश्वर को तिन जगत् में भूत भविष्यत् और वर्तमान वस्तु का प्रकाश करन वाला ज्ञ न सर्वदा पूर्णरुप से विद्यमान है। जिस ईश्वर को काम क्राध मोह-मान माया लोभ निद्रा आदि दूषण हैं ही नहीं। जिसके ज्ञान गुणोत्कर्ष के आगे सूर्य भी एक खद्योतकी उपमा है। जिस प्रभुका

ज्ञानातिशय जीवों के अंतःकरण में प्रगट होकर आज्ञान रूपी अन्धकार को नाश करता है । पुनः जो ईश्वर जन्म-जरा-मरण-आधि-व्याधि-उपाधि से रहित है । जो ईश्वर स्त्री पुरुष शत्रु-मित्र-रंक-राय-शेठ- शाहुकार-सुख-दुःख इत्यादि में सर्वदा समान मन वाला है अर्थात् समभाव ही को धारण करता है । जिस को शब्द-रूप-रस-गन्ध और स्पर्श रूप पांचो प्रकार के विषयों का अभाव है । जिसने उन्मादादि पांचो प्रमाद को जीत लिया है । और जो ईश्वर अठारह दोषों से रहित है । इस प्रकार के चिदात्मा अचिंत्य स्वरूप-परमात्मा-ईश्वर को हम मानते हैं । हे राजन् ! जिस अधम ब्राह्मण ने आप को कहा है कि—जैन दर्शन में परमेश्वर का स्वीकार नहीं किया है । वह सर्वथा असत्यप्रलापी है । क्या उस ब्राह्मण ने 'हनुमान नाटक' का यह निम्न लिखित श्लोक नहीं पढ़ा है:—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्मेति मिमांसकाः ॥
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्त्तेति नैयायिकाः ।
सोयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥१॥

अर्थात्—परमात्मा को शैव लोग 'शिव' कह करके उपासना करते हैं । वेदान्ती लोग 'ब्रह्म' शब्द से । प्रमाण में पटु बौद्ध लोग बुद्ध' शब्द से । मिमांसक लोग 'कर्म' शब्द से । जैन शासन में त जैन लोग 'अर्हन्' शब्द से तथा नैयायिक लोग 'कर्ता' शब्द से यवहार करते हैं । वही त्रैलोक्य का स्वामी परमात्मा तुम लोगों ो वाञ्छित फल देने वाला है ।

इस श्लोक से यह बात सुस्पष्ट मालूम हो जाती है कि ' जैन ' ोग परमात्मा को मानते हैं ।

हे राजन् ! वह परमेश्वर जिसको हम अर्हन शब्द से पुकारते हैं, वह दो प्रकार के स्वरूपों में स्थित है । पहिले तो तीर्थंकर समवसरण में स्थित होते हुए और ज्ञानादि लक्ष्मी के स्थान भूत विचरते हुए हैं । इस समयमें भगवान को चोतीस अतिशय और वाणी के पेंतीस गुण होते हैं । (सूरीश्वर ने इनका भी स्वरूप समझाया ।)

दूसरे प्रकार में अर्थात् दूसरी अवस्था वाले देवका स्वरूप इस तरह है । वह परमात्मा जिसकी आत्मा संसार से उच्छिन्न है, जो सर्वदा चिन्मय और ज्ञानमय है । इसका कारण यह है कि उस अवस्था में उसके पांच प्रकार के शरीरों में से कोई भी नहीं है। इसके अतिरिक्त वह ईश्वर अनुपम है अर्थात जिसकी उपमा देने के लिये कोई वस्तु ही नहीं है तथा जो नित्य है । ऐसे देव को हम मानते हैं । समुच्चय रूपसे कहा जाय तो अठारह दूषणों से रहित देव को हम मानते हैं-अठारह दूषण ये हैं —

अन्तराया दान-लाभ-वीर्य भोगोपभोगगाः ।
हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव च ॥१॥
कामो मिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा च विरतिस्तथा ।
रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाप्यमी ॥२॥

दानान्तराय, लाभान्तराय, वीर्यान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, काम, मिथ्यात्व, अज्ञान, निद्रा, अविरति, राग और द्वेष यह अठारह दूषणों का ईश्वर में अभाव है ।

हे राजन् ! अब आपको विश्वास हुआ होगा कि जैनी लोग जिस प्रकार ईश्वर को मानते उस प्रकार और कोई भी नहीं मानते हैं । किन्तु अन्य लोग व्यर्थ ईश्वर मानने का दावा करते हैं ।

ईश्वर को मान करके उसपर अनेक प्रकार का बोझा डाल देना या ईश्वर को मान करके उसके विचित्र प्रकार के स्वरूप बताकर कलङ्कित करना यह क्या ईश्वर को मानना है ? नहीं। कदापि नहीं यह भक्तों का काम नहीं है। यह काम तो कुभक्तों का है।

इस प्रकार बड़े विस्तार से ईश्वर का स्वरूप सुनतेही राजा का चित्त निःसंशय होगया। और अन्य वादियों के मुंह उतर गये। इस सभा में सूरिजी की जय होगई। सूरिजी ने बादशाह के सन्मुख ब्राह्मणों को मूक बनाकर यश स्तंभ गाड़ दिया। इसके बाद बादशाह से स्तुति के भाजन होकर सूरीश्वर अपनी शिष्य मण्डल के साथ उपाश्रय में पधारे।

इस समय में सूरीश्वर ने वाचक पद का नन्दिमहोत्सव करवाया, जिसमें अकबर बादशाह के अबुलफयज नामक मंत्री ने अधिक द्रव्य का व्यय किया। सूरीश्वर ने अकबरबादशाह के साथ धर्मचर्चा करने ही में दिवस व्यतीत किए।

अब एक दिन राजा परम प्रसन्न चित्त बैठा था। राजा का चित्त बड़ाही प्रसन्न था। इस समय में सूरीश्वर ने राजा से कहा कि:-"हेनृपेश्वर! आप पृथ्वीपाल हैं। जगत् के सब जीवों की रक्षा करने का दावा रखते हैं। तथापि गौ, वृषभ, महीष, महिषी की जो हिंसा आपके राज्य में होती है वह हमें आनन्ददायक नहीं है। अर्थात् जगत् का उपकार करते वाले निरपराधी जीवों की हिंसा करना कदापि योग्य नहीं है। दूसरी बात यह कि आप जैसे सार्वभौम-सौम्य राजा को मृत मनुष्यद्रव्य ग्रहण करना तथा मनुष्य बांधों जाय तब उसका द्रव्य लेलेना यह भी आप की कीर्ति के लिए योग्य नहीं है। अर्थात् ये काम आपकी कीर्ति को हानि पहुंचाने वाले हैं। अत एव हे राजन्! उपर्युक्त कार्य आप

के लिए उचित नहीं मालूम होते हैं। क्योंकि आपने बहुत द्रव्य की उत्पत्ति के कारणभूत 'दाण' और 'जीजीआ' नामका कर त्याग दिया है तो फिर उपर्युक्त कार्यों में आपको क्या विशेष चिन्ता हो सकती है।

सूरिजीने दिखलाये हुए उपर्युक्त छ कार्य राजाकी तुष्टि को करने वाले हुए। राजा ने अपने अधिकारी देशों में उपर्युक्त छ कार्य बन्द करने की सूचना के आज्ञा पत्र सम्पूर्ण राज्य में भेजवा दिए।

अकबर बादशाह के आग्रह से सूरिजी ने इस साल का चातुर्मास तो लाहौर ही में किया। जैसे २ आचार्य महाराज के साथ में बादशाह का विशेष समागम होता गया तैसे २ बादशाह के अंत करण में विशेष रूपसे 'दया भाव' प्रगट होता गया। जैसे चन्द्रकी विद्यमानता में आकाश सुशोभित होता है, वैसे श्रीसूरीश्वर की विद्यमानता में लाभपुर (लाहौर) शहर बहुतही देदीप्यमान होता रहा। श्रीविजयसेनसूरि ने बादशाह की सभा में ३६३ वादिओं को परास्त किया। तथा बादशाह ने प्रसन्न होकर श्रीविजयसेनसूरि को 'सवाई' का खिताब दिया। यह बातें ग्रन्थान्तरों से ज्ञात होती हैं।

दशवां प्रकरण।

(श्रीहीरविजयसूरिजी की सिद्धगिरि की यात्रा, वहाँ से आकर उन्नतनगर में दो चातुर्मास करना, विजयसेनसूरि का पट्टन आना, हीरविजयसूरि का स्वर्गमन और श्रीविजयसेनसूरि का विलाप ।)

इधर जब श्रीविजयसेनसूरि लाहोर में विराजते थे, उस समय में श्रीहीरविजयसूरि पाटन में चातुर्मास करके सकल दुःखों को ध्वंस करने वाली श्रीशत्रुंजयतीर्थ की यात्रा करने को उत्सुक हुए। चातुर्मास समाप्त होने पर बहुत साधु के समुदायसे वेष्टित श्रीसूरीश्वर सिद्धगिरी (शत्रुंजय) पधारे। इस समय में सूरिजीके साथ बहुत देशों के श्रीसंघ भी आएथे, जिन्हों ने नानाप्रकार के द्रव्यों से शासन की प्रभावनायें कीं और देवगुरुभक्ति में सदा तत्पर रहे।

तीर्थाधिराज की यात्रा करने के समय पहिले पहल त्रिलोक के नाथ श्रीऋषभदेव भगवान् को तीन प्रदक्षिणा देते हुए आपने मन वचन और काया से स्तुति की। यात्रा करने को आए हुए संघ ने भी अतुच्छ द्रव्य से पूजा प्रभावना करके पुण्य उपार्जन कर लिया। यहां पर थोड़े ही रोज रह करके श्रीसूरीश्वर ने यहां से अन्य स्थान को विहार किया।

उन्नतपुरी के श्रीसंघ के आग्रह से आपका उन्नतपुरी में आना हुआ। इस नगर में धर्म का लाभ अधिक समझ कर आपने चातुर्मास भी यहां ही किया। खेद का विषय इस समय यह हुआ कि यहां पर आपके शरीर में किसी असाध्य रोगने प्रवेश किया और इससे आपको यहां पर चातुर्मास भी करना पड़ा।

इधर हमारे श्रीविजयसेनसूरि लाहोर से विहार करने को उत्कंठित हुए। यहां पर आपने बहुत वादियों से जय प्राप्त किया, फिर यहां से विहार करके पृथ्वीतल को पावन करते हुए आप 'महिमनगर' पधारे। आपने यहां चातुर्मास किया। इस अवसर पर आपके पास उन्नतपुरी से एक पत्र आया। उसमें यह लिखा गयाथा कि-'परमपूज्य श्रीहीरविजयसूरि महाराज के शरीर में व्याधि है, और आप जल्दी यहाँ आइए।' पत्रको पढ़ने ही सब मुनिमण्डल के अन्तःकरणों में बड़ा दुःख उत्पन्न हुआ। बस! शीघ्रही यहां से सब लोग उन्नतपुरी को प्रस्थानित हुए। मार्ग में छोटे बड़े शहरों में लोग बड़ेर उत्सव करने लगे। क्योंकि आप अकबरबादशाह को प्रतिबोध करके बहुत से अच्छे २ कार्य करके आते थे। बहुत दिन व्यतीत होने पर आप पत्तन (पाटन) नगर में पधारे।

इधर उन्नत नगर में प्रभु श्रीहीरविजयसूरिजीने जाना कि अब मेरा अन्त समय है। ऐसा समझ करके आपने चौरासी लक्ष जीव योनिके साथ क्षमापना और चार शरण रूप, चारित्र धर्म रूप सुन्दर गृहकी ध्वजा की उपमा को धारण करने वाली, क्रिया करली। संलेखना और तपके निर्माण से अपनी आत्मा को क्षीण बल जान करके श्रीहीरविजयसूरिजी ने अपने सब मुनिमण्डल और श्रद्धालु श्रावकों को एकत्रित किए। सबके इकट्ठे होने पर आपने अन्तिम उपदेश यह दिया कि:—

' हे श्रद्धालु मुनिगण! थोड़े ही समय में मेरी मृत्यु होने वाली है। इस मृत्यु से मुझे किसी बात की चिंता नहीं है। क्योंकि इस मरण का भय नाश करने के लिये तीर्थंकर जैसे भी समर्थ नहीं हुए। कहा भी है कि—

तित्थयरा गणहारी सुरवइणो चक्किकेसवा रामा ।
संहरिश्रा हयविहिणा का गणणा इयर लोगाणं ?॥१॥

अर्थात्—तीर्थंकर, गणधर, देवता चक्रवर्ती, केशव, राम आदि, सभी इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुए तब इतर लोगों का कहना ही क्या है ?

जब ऐसी ही अवस्था है तो फिर क्यों मुझे दु ख हो ?

हे मुनिगण ! इस संयम की आराधना में भी आप लोगों को को किसी तरह की चिंता नहीं है। क्योंकि पट्टधर श्रीविजयसेनसूरि मेरे स्थान पर मौजूद हैं। धीर, वीर, गभीर श्रीविजयसेनसूरि तुम्हारे जैसे पण्डितों के द्वारा मुख्य कर सेवनीय है। (इस अवसर पर समस्त साधुओं ने 'तहत्ति तहत्ति' करके इस आज्ञा को शिर पर धारण किया)। हे मुनिगण ! श्रीविजयसेन सूरिकी आज्ञा को मानते हुए सब कोइ प्रेम भाव से रहकर परमात्मा वीर के शासन की उन्नति करने में कटिबद्ध रहना।"

बस ! सब साधुओं को इस प्रकार हितशिक्षा दे करके अनशन करने की इच्छा करते हुए सूरीश्वरने कहा कि—"महर्षिओं का यही मार्ग है कि आयुष्य के अन्त में भवदु खको नाश करने वाला अनशन करे" साधु लोग मना करने लगे और दुःखी होने लगे तब पुन सूरिजी ने कहा कि-" हे महाभागाः ! मोक्ष के हेतुभूत कृत्य में आप लोग बाधा मत डालो' इत्यादि वचनों से, अपने शिष्य मण्डल के आग्रह का निवारण करके आप अनशन करने को प्रस्तुत होगए।

इस क्रिया को देखते हुए शिष्य लोगमें से कइ लोग मूर्च्छित होने लगे। कइ लोग कल्पात करने लगे। सूरीश्वर ने शिष्यों के कल्पांत को दूर करके श्रीपञ्च परमेष्ठिकी साक्षी स अतिउत्सुकता

के साथ अनशन कर लिया । इस समय में श्राद्ध वर्ग ने जो महोत्सव किया उसका वर्णन इस लिखनी से होना असम्भव है ।

इसके पश्चात् मोक्ष सुख को देने वाला नमस्कार (नवकार) मन का ध्यान करते हुए, मन वचन काया से किये हुए पापों की निंदा करते हुए, प्राणि मात्रमें मैत्री भावको धारण करते हुए, शरीर का भी ममत्व को त्याग करते हुए श्रीहीरविजयसूरीश्वर ने स-१६५२ मिती भाद्रपद शुक्ल एकादशी के दिन इस भवसम्बन्धी मलीन शरीर को त्याग करके देवयोनि का मनोज्ञ शरीर धारेण किया ।

अब श्रीहीरविजयसूरिजी इस लोक से चले गए । आपने देव लोक को भूषित किया । श्रीसूरीश्वर का देहान्त होने पर इस नगर के समस्त सघने इस मृत शरीर का अनेक प्रकार के चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों से विलेपन किया । एक विशाला-नामक शिविका को बना करके उसमें उस मृत शरीर को स्थापन किया । शोक चित्त वाले हजारों मनुष्यों ने सस्कार भूमि में ले जा कर चन्दनादि काष्ठ से उस शरीर का अग्नि सस्कार किया ।

इसके उपरान्त इस उन्नत नगर से श्रीसूरीश्वर स्वर्ग गमन के समाचार पत्र ग्राम ग्राम भेजे गये-जब पाटन नगर में श्रीविजयसेन सूरिजी के पास यह दुःख दायक समाचार आया और जब वे उसे पढ़ने लगे तो उनका हृदय अकस्मात् भर आया । सब साधुमण्डल बड़ा दुःखी हुआ । पवित्र गुरु महाराज के विरह से खेदकी सीमा रही नहीं । हमारे श्रीविजयसेनसूरिजी सखेद गद्गद वाणी से बोलने लगे'-

"हे तात ! हे कुलीन ! हे अभिजात ! हे ईश ! हे प्रभो ! आप मुझ से बार २ यह कहते थे कि 'तूं मेरे हृदय में है' यह

सब 'अजागलस्तनवत्' हो गया। हे प्रभो! मैं लाहौर से ऐसा समझ करके निकलाथा कि 'गुरु वर्य के चरण कमल में जाकर सेवा करूंगा। परन्तु हे नाथ आपने तो जरासा भी विलंब नहीं किया। हे स्वामिन्! आप के मुख कमल के आगे रहने से—आप के चरणारविंद में रहने से मेरी जो शोभा थी वह शोभा अब आपके विरह से 'गगनवल्ली' के समान होगई।

हे भगवन्! अब आपके बिना मैं किसको प्रति महाराज साहेब! महाराज साहेब! कहता हुआ विद्याभ्यासी बनूंगा। हे निर्मेश! आपके मुख कमल को देखने से मुझे जो रति होती थी वह रति हे प्रभो! अब किस तरह होगी? हे प्रभो! 'तू जा' 'तू कह' 'तू आव' 'तू भण' इत्यादि आप के कोमल वचनों से मेरा अन्तःकरण जा फूल जाता था अब वह आनंद मुझे कैसे प्राप्त होगा? और उस कोमल शब्दों से मुझे कौन पुकारेगा? हे प्रभो! अब आपकी आज्ञा के अभाव में मैं किसकी आज्ञा को अपने मस्तक पर धारण करूंगा? हे स्वामिन्! आप के अस्त होनेसे अब कुपाक्षिक लोग बिचारे भव्य जीवों के अन्तःकरण में अपने संस्कारों का प्रवेश कराकर अन्धकार को फैला देंगे। हे प्रभो! आप जैसे प्रकाशमय स्वामी के अभाव में हमारे भरतक्षेत्र के लोग अब किस पवित्र पदार्थ को अपने अन्तःकरण में स्थापन करके प्रकाशित होंगे।

जब तक सूर्य चन्द्रमा का प्रकाश है तब तक संसार में रहेगी। क्योंकि आपके वाणी रूप प्रदीप से बोधित होकर श्रीअकबर बादशाह ने श्रीशत्रुञ्जयतीर्थ जैनों के हस्तगत किया है। हे विभो! दीपक के अस्त होने से अन्धकार फैल जाता है वैसे आप जैसे सूर्य के अस्त होने से अब कुमति लोग अपने अन्धकार को फैलावेंगे। यही मुझ दुःख है। हे विन! आपका उत्कृष्ट चारित्र—आपकी संयम आराधना, सचमुच निवृत्ति पदका(ही) देने वाली थी। तथापि आप देवगत हुए। इसका कारण इस कलिकाल की महिमा ही है।

हे प्रभो! 'तप-जप-संयम-ब्रह्मचर्य इत्यादि मोक्ष कृत्य है'। 'साधु धर्म मुझ बहुत प्रिय मालूम होते हैं' इत्यादि, जो आप कहते थे वह सब व्यर्थ होगया। क्योंकि आप तो स्वर्ग में चलेगए। यदि आपको तपादि प्रिय ही थे तो स्वर्ग में क्यों आप पधारे। हे मुनीन्द्र! जो कोई आपका नाम स्मरण करता है। जो व्यक्ति आपका ध्यान करता है उनको आप साक्षात् हैं। आप उसी प्रकार श्रद्धालुवर्ग के लिये प्रत्यक्ष हैं जैसे मित्र के लेखाक्षरों को देखकर लोग उसका मिलना प्रत्यक्ष समझते हैं।

इस प्रकार बहुत विलाप करके श्रीविजयसेनसूरि शान्त हुए। और फिर महात्मा पुरुष ने आत्म-समत्व को निवेदन करते हुए शोक को भी शान्त किया।

श्रीहीरविजयसूरि जी के देहान्त होने से श्रीतपगच्छ का समस्त कार्य श्रीविजयसेनसूरिही के शिरपर आपड़ा। दिन प्रति दिन श्रीगच्छ की शोभा श्रीहीरविजयसूरि के समय ही की तरह बढ़न लगी। मिथ्यात्वियों का जोर जरा भी नहीं पड़ सका। जैनधर्म की विजय पताका बड़ी जोर से फहराती ही रही और श्रीहीरविजय

सूरि में जैन शासन की प्रभुता रूप जो लक्ष्मी थी वही श्रीविजयसेनसूरि ने प्राप्त की।

ग्यारहवां प्रकरण।

(श्रीविजयसेनसूरि की कीहुई प्रतिष्ठाएं। तीर्थयात्राएं। भूमि में से श्रीपार्श्वनाथ प्रभू का प्रगट होना। श्रीविद्याविजय (विजयदेवसूरि) को आचार्यपद एवं भिन्न २ मुनिराजों को भिन्न २ पद प्रदान होना इत्यादि)।

अब श्रीतपगच्छ रूपी आकाश में सूर्य समान श्रीविजयसेनसूरि भव्य जीवों को उपदेश देते हुए विचरने लगे। श्रीपत्तननगर से विहार करके स्तम्भ तीर्थ (खंभात)के लोगों के निवेदन से आपका खंभात आना हुआ। यहांपर आपका एक चातुर्मास हुवा। खंभात से विहार करके आप अहमदाबाद पधारे। यहां के लोगों ने बड़ा उत्सव किया। सुना—चांदी के द्रव्यसे सूरीश्वर की पूजा की। यहां एक 'मोटक' नामक श्रावक, जोकि बड़ा श्रद्धावान था, रहता था। इस महानुभाव ने बड़े उत्सव के साथ श्रीसूरीश्वर के हाथ से जिन बिंब की प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रतिष्ठा के समय में सूरिजी ने पं० लब्धिसागर मुनि को उपाध्याय पद प्रदान किया। यहांपर एक 'वच्छा' नामक जौहरी ने भी सूरीश्वर द्वारा जिन बिंब की प्रतिष्ठा करवाई। इन प्रतिष्ठाओं के अतिरिक्त पंचमहाव्रत अणुव्रत महाव्रत आरोपणादि बहुत से शुभकार्य सूरीश्वरने यहांपर किए। यहांपर सूरिजी के चातुर्मास करने से सारे नगर के लोगों को आनंद का अपूर्व लाभ हुआ। इस समय का सम्पूर्ण वृतान्त

कहने के निमित्त एक बड़े ग्रंथ की आवश्यकता है। सारांश यह कि यह वर्ष भी ऐसा हुआ कि जिससे सारे देश के लोग परम प्रसन्न रहे। अहमदाबाद शहर में ही चातुर्मास समाप्त करके आप कृष्णापुर (कालुपुर) पधारे।

एक दिन कालुपुर में बिराजते हुए सूरीश्वर ने परम्परा से यह बात सुनी कि:-" शहेर में ' ढींकु ' नामक पाटक (पाडे) में श्रीचिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान किसीने भूमि में स्थापन किए हुएहैं"। लोगों की इच्छा प्रभू को बाहर निकालने की हुई। लेकिन राजाज्ञा के बिना कैसे निकाल सकते थे? इस समय अहमदाबाद में काजी हुसेनादि रहते थे। इनसे मुलाकात करके श्रीसूरीश्वरने श्रीप्रभु को बाहर निकालने की आज्ञा दिलवाई।" इसके बाद सं० १६५४ में शिष्ट पुरुष को स्वप्न देकरके श्रीप्रभु चिंतामणिपार्श्वनाथ प्रभु प्रगट हुए। प्रभु के प्रगट होने से चारों ओर आनन्द छागया। भगवान् के दर्शन से लोगों की इष्टसिद्धिएं होने लगी। इस प्रतिमा को श्रीसंघने सिकन्दरपुर में बड़े उत्सव के साथ स्थापन किया।

एक दिवस श्रीसूरिजी अपने शिष्यमण्डल के साथ श्रीपार्श्वनाथ प्रभु के मन्दिर में पधारे और इन्होंने जो प्रभुकी स्तुति की। इसका थोड़ासा उल्लेख यहां पर किया जाता है।

" जिसका नाम स्मरण करने से श्वास-भगन्दर-श्लेष्म और क्षयादि रोग नाश होजाते हैं। ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो।

' जिसका नाम स्मरण करने से समस्त प्रकार के चोर भाग जाते हैं ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो।

" जिसका नाम स्मरण करने से युद्ध में जय होता है, जिसके नाम स्मरण से भयी प्राणी भय से छूट जाते हैं, जिसका नाम.

स्मरण करने से अपत्य रहित पुरुष भी अद्भुत पुत्र की प्राप्ति करता है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करें।

" जिसका नाम स्मरण करने वाला पुरुष अनेक प्रकार के घोड़े-हाथी रथ पदाति आदि पदार्थ युक्त राज्य को प्राप्त करता है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो।

" जिसका नाम स्मरण करने से मन्त्र-तंत्रादि की विधि भी सिद्ध होती है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो "।

" जिसका नाम स्मरण करने से असाध्य विषय भी साध्य होसकती है-ऐसे प्रभु रक्षा करो "।

" जिसके नाम स्मरण से, अनेक तपस्या से प्राप्त होने वाली, अष्टसिद्धि प्राप्त होती है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु रक्षा करो "।

" जिसके 'ओं-ह्रीं-श्रीं-अर्हं श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथाय नमः' इस प्रकार के मन्त्र से सारा जगत् वश होजाता है-ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु इस जगत् की रक्षा करो "।

इत्यादि प्रकार से स्वच्छ और निर्मल हृदय पूर्वक श्रीपार्श्वनाथ प्रभु की स्तवना करके इस प्रभु का नाम सूरीश्वर ने 'श्रीचिंतामणि पार्श्वनाथ' स्थापन किया। श्रीसंघ के आग्रह से सूरिजी ने चातुर्मास सिकंदरपुर में ही किया।

इस सिकन्दरपुर में एक 'लहुआ' नामक सुश्रावक रहता था, जो बड़ा बुद्धिमान् और धनाढ्य था। इस महानुभाव ने अपने द्रव्य से श्रीशान्तिनाथ प्रभु का एक बिंब बनवाया और उत्सव के साथ श्रीसूरीश्वर के हाथ से प्रतिष्ठा करवाई। इस प्रतिष्ठा के समय श्रीनन्दिविजय मुनीश्वर को " वाचक " पद दिया गया और विद्याविजयमुनि जी को " पण्डित " पद। अब सूरिजी की

इच्छा सूरिमंत्र की आराधना करने की हुई और इसी विचार से आपने लाटापल्ली (लाडोल) के प्रति विहार भी किया।

लाडोल में आकर आपने छ विगय (घृत-दुग्ध-दही-तेल-गुड़ और पक्वान्न) का त्याग किया। छुट्ठ-अट्ठमादि तपस्या करना आरंभ की। तथा पठन-पाठनादि का कार्य अपने शिष्यों को दे करके वचनोच्चार करना बन्द करके ध्यानानुकूल वेष तथा शरीरावयवों को रख करके आप सूरिमंत्रका स्मरण करते हुए ध्यानमें बैठ गए।

संपूर्ण ध्यान में आरूढ होते हुए जब तीन मास पूरे हो गए तब एक यक्ष बद्धाञ्जली होकर,सूरिजी के सामने आ खड़ा हुआ। और कहने लगा 'हेप्रभो ! हे भगवन् ! आप पण्डितवर्य श्रीविद्याविजय जी को स्वपट्ट पर स्थापन करो। यह विद्वान् मुनि आपही के प्रतिबिंब रूप हैं। ' बस ! इतने ही शब्द कर वह अन्तर्ध्यान हो गया। इन वचनों को सुनते हुए सूरीश्वर बहुत प्रसन्न हुए । जब सूरिजी ध्यान में से बाहर निकले अर्थात् ध्यान से मुक्त हुए तब लोगों ने बड़ा उत्सव किया। इस सालका चातुर्मास आपने लाडोलहीं में किया। इसके उपरान्त वहां से विहार करके पृथ्वी तलको, पवित्र करते हुए आप इडर पधारे । वहां एक बड़ा गढ़ है, वहां पर आकर श्रीऋषभदेवादि प्रभु के, दर्शन करके सब मुनि गण कृतकृत्य हुए । यहां से आप तारंगाजी तीर्थ की यात्रा करने को पधारे। तारंगा में श्रीअजितनाथ प्रभुकी यात्रा करके फिर सौराष्ट्र देश में पधारे। सौराष्ट्र देश में आते ही आपने पहिले पहल तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय की यात्रा की। और वहां से 'ऊना' पधारे। ऊनामें जगद्गुरु श्रीहीरविजय सूरीश्वरकी पादुका की उपासना करके पुनः सिद्धाचल को (शत्रुञ्जय) पधारे। यात्रा करके खंभात के श्रीसंघ के अत्याग्रह से आप का खंभात आना हुआ।

समाप्त में आपने गंभीर वाणी से देशना देनी आरम्भ की। इस देशना में मुख्य विषय भगवत्प्रतिष्ठा-तीर्थ यात्रा-और बड़े बड़े उत्सवों से शासन प्रभावना' आदि रक्खे थे। सूरीश्वर के उपदेश से अति श्रद्धावान्—धनवान्—बुद्धिमान् 'श्रीमल्ल' नामक श्रावक के मनमें यह विचार हुआ कि 'लक्ष्मीलता का यही फल है कि यह सुकृत में लगाई जाय। क्योंकि जिस समय इस संसार से हम चले जायँगे, उस समय खाली हाथही जायँगे। न तो भाई काम आवेगा, न पिता, न माता और न लक्ष्मी। लक्ष्मी वही सार्थक है जो इस हाथ से धर्म कार्यों में लगाई जायगी' बस! यही विचार करके 'श्रीमल्ल' ने आचार्य पदवीका महोत्सव करना निश्चय किया।

गुजरात—मारवाड़-मालवा आदि देशों में कुंकुम पत्रिकाए भेजवा दी गई। इस महोत्सव के ऊपर अनेक देश के श्रावक इकट्ठे होने से यह नगर पञ्चरंगी पाघ से सुशोभित होने लगा।

श्रीमल्ल श्रावक ने महोत्सव आरंभ किया। अपने यहां पर एक सुन्दर मण्डप की रचना की। शहर के समस्त राजमार्ग साफ करवाए। सुगन्धित जल से नगर में छिड़काव हो गया। घर घर में नए तोरण बांधे गए। घरकी दिवालें रंग बिरंग से सुशोभित की गई। वृक्षों के ऊपर ध्वजा—पताकाए लगाई गई। देव—मन्दिर भी अत्युत्तम रीति से सजाए गए। देखते ही देखते में सम्पूर्ण नगर अमरापुरी की उपमा लायक बन गया।

आचार्य पदवी के दिन 'श्रीमल्ल' शेठ अपने भ्रातृपुत्र शोभचन्द्र को साथ में लेकर, पञ्चवर्णा के वस्त्र धारण करके अनेक प्रकार के आभूषणो से अलङ्कृत होकर श्रीसूरिजीके पास आए और इस तरह प्रार्थना करने लगे—

" हे पूज्यपाद ! सूरि पदकी स्थापना का समय निकट आया है आप कृपा करके मेरे घरको पवित्र करिये " ।

इसके पश्चात् तुरन्तही श्रीसूरीश्वर अनेक साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविका के वृन्द के साथ वहां पधारे जहां कि आचार्य पदवी देने के लिये मण्डप की रचना हुई थी। सं० १६५६ मिती वैशाख शुक्ल ४ सोमवार के दिन उत्तम नक्षत्र में श्रीविद्याविजय मुनीश्वर को 'सूरि' पद अर्पण किया गया । इस नए सूरिजी का नाम ' श्रीविजयदेवसूरि ' रक्खा गया ।

' श्रीमल्ल ' नामक श्रावकने इस समय अभूतपूर्व दान किया। खाद्यादि सामग्रिओं की तो सीमाही नहीं थीं। बाहर से आए हुए अतिथियों को उत्तमोत्तम भोजन देकर स्वामिवात्सल्य किया गया। इस उत्सव के समाप्त होने के भीतरही श्रीसंघ के आग्रह से श्रीसूरीश्वर ने श्रीमेघविजयमुनि जी को उपाध्याय पद दिया। इसके बाद थोड़ेही दिनों में 'कीका' नामक ठक्कुर के यहां श्रीप्रभुप्रतिमा की प्रतिष्ठा की और उसी समय विजयराज मुनीश्वर को भी उपाध्याय पद दिया गया। इस तरह ' श्रीमल्ल ' और ' कीका ' ठक्कुर ने समस्त संघ को संतुष्ट किया।

इसी शहर में चातुर्मास पूर्णकर सूरिजी फिर अणहिलपुर पाटन पधारे। इस नगर में चातुर्मासान्त में श्रीविजयसेनसूरि की इच्छा श्रीविजयदेवसूरिजी को गच्छ की समस्त आज्ञा देने की हुई। इस कार्य के निमित्त महान् परीक्षक पं० सहसवीर नामक श्रावक ने एक बड़ा उत्सव किया । इस उत्सव पूर्वक सं० १६५७ मिती पौष वदी ६ के दिन उत्तम मुहूर्त में श्रीविजयदेवसूरीश्वर को संपूर्ण सिद्धान्त संबन्धी वाचना देने की तथा तपगच्छ का आधिप-

स्वामिक आज्ञा दी गई। इतनाही नहीं बल्कि उस आज्ञा रूपी नगरी के किलेभूत उत्तम सूरिमंत्र भी अर्पण किया गया।

अब अणहिलपुर पाटण से विहार करके सूरिजी श्रीसंखेश्वर जी पधारे। यहां पर श्रीसंखेश्वरजी पार्श्वनाथ की यात्रा की और नयविजय नामक मुनि को लुंपाकमत त्याग करा कर गुरु शिष्य का आश्रयण करते हुए उपाध्याय पद अर्पण किया। इस समय अनेक घोड़े-हाथी-ऊंट-पैदल वगैरह आडंबर के साथ मारवाड देश से महान् संघपति हेमराज, श्रीसंघकी साथ में शत्रुञ्जय तीर्थकी यात्रा को जाते हुए श्रीसंखेश्वर में आकर बड़े उत्सव के साथ मुनीश्वरों का दर्शन करने को थोड़े रोज ठहर गए।

यहां से विहार करके ग्रामानुग्राम विचरते हुए, भव्य प्राणिओं को वीर परमात्माकी वाणी का लाभ देते हुए सूरीश्वरजी
बाद पधारे।

बारहवां प्रकरण।

(अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा। तेजपाल नामक श्रावक का बड़ा भारी संघ निकालना। रामसैन्य तीर्थ की यात्रा। मेघराज मुनिका लुंकामत त्याग करना। तीर्थाधिराजकी यात्रा और श्रीविजयदेवसूरिजी का पृथक् विचरना इत्यादि)

अहमदाबाद के श्रावकों ने श्रीसूरीश्वरजी की वाणीसे अपूर्व लाभ उठाया। इधर प्रतिष्ठा पर प्रतिष्ठा होने लगी। एक पुण्यपाल नामक श्रावक ने ४१ अंगुल प्रमाण की श्रीशीतलनाथ स्वामी की प्रतिमा की, तथा उनके भाइ ठाकर ने ७४ अंगुल प्रमाण की

श्रीसंभवनाथ स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई । इसी के साथ २ एक नाकर नामक श्रावक ने भी ४१ अंगुल प्रमाण की श्रीसंभवनाथ स्वामी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई । इस अवसर पर स्तम्भतीर्थ के रईस वजीआ (व्रजलाल) नामक श्रावक ने (जिसने की पहिले भी श्रीपार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा करवाई थी) एक पार्श्वनाथ प्रभु की तिरसठ अंगुल प्रमाण की मूर्ति बनवा कर प्रतिष्ठा करवाई।

इस पार्श्वनाथप्रभु की महिमा अपूर्वही होने लगी । जो व्यक्ति स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले इस पार्श्वनाथप्रभु के नाम-मंत्र का सर्वदा अपने अन्त:करण में स्मरण करने लगा, उसको आधि—व्याधि-विरोध-समुद्रभय—भूत—पिशाच—व्यन्तर—चोर आदि सभी प्रकार के भय नष्ट होने लगे । बात भी ठीक है । 'श्रीपार्श्वनाथाय नम. ' इस मन्त्रमें ही इस प्रकार की शक्ति स्थापित है। पूर्वाचार्योंने भी यही कहा है कि:———

> आधिव्याधिविरोधिवारिधिधुधि व्यालस्फटालोरगे ।
> भूतप्रेतमलिम्लुचादिषु भयं तस्येह नो जायते ॥
> नित्यं चेतसि ' पार्श्वनाथ ' इति हि स्वर्गापवर्गप्रदं ।
> सन्मन्त्रं चतुरक्षरं प्रतिकलं यः पाठसिद्धं पठेत् ॥१॥

इसके सिवाय चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् ' सिंघजी ' नामक श्रेष्ठीने अजितनाथ प्रभुकी प्रतिमा स्थापित करवाई।'श्रीपाल' नामक जौहरीने ६७ अंगुल प्रमाण की पार्श्वनाथकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई । जिसका नाम 'जगद्वल्लभ' रक्खा । एवं स्तम्भ तीर्थ के रईस तेजपाल नामक श्रावक ने ६६ अंगुल प्रमाण की आदीश्वर भगवान् की प्रतिमा स्थापित करवाई । पट्टण नगर निवासी तेजपाल सोनीने ४७ अंगुल प्रमाण की श्रीसुपार्श्वनाथ प्रभुकी प्रतिमा

निर्मित करवाई । इन ऊपर कहीं प्रतिमाओं और अन्य अनेक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा श्रीविजयसेन सूरीश्वर ने अपने हाथ से की।

इस साल में श्रीसूरीश्वर के उपदेश से श्रीतेजपाल सोनी ने संघपति होकरके तीर्थयात्रा करने को संघ निकाला। हजारों मनुष्य को साथ लेकर श्रीगुरु आज्ञा प्राप्त कर संघपति यात्रा के लिये चले। मार्ग में जहां २ श्रावक का घर आता था, वहां २ प्रत्येक घर में एक २ 'महिमुन्दिका' देते थे। पहिले पहल इस संघ ने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा की। इसके पश्चात् सीरोही—राणपुर-नारदपुरी-वरकाणा आदि तीर्थोंकी यात्रा करके मारवाड में स्थित प्रायः समस्त तीर्थों की यात्रा करके सारासंघ अपने देश में आया। अपने नगर आने के बाद संघपतिने श्रावक के प्रत्येक घरमें एक २ लड्डु और रुपये युक्त एक२ थाल की प्रभावना की। यह सब प्रभाव श्रीविजयसेनसूरिजी का ही था। क्योंकि तीर्थ यात्रा—स्वामिभाईकी भक्ति आदि शासन प्रभावना के कार्य करने से कैसे २ फलकी प्राप्ति होती है? यह सब गुरु महाराज के उपदेश से श्रेष्ठी ने जाना था।

यहां के लोगों को भी धर्मदेशना का अपूर्व लाभ मिला। सूरि जी के समुदाय की, ज्ञान-ध्यान-तप-संयमादि क्रियाओं का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता था कि उनको देखते ही लोगों को धर्मकी ओर अभिरुचि हो जाती थी। आपके सत्संग से उपधान मालारोपण—चतुर्थव्रत-बारहव्रत आदि अनेक प्रकार के नियम श्रावकों ने ग्रहण किए थे। इसी तरह सारा चातुर्मास सूरीश्वर जी के वाग्विलास सेही समाप्त हुआ।

कुछ काल पहिले श्रीहीरविजयसूरीश्वर के समय में (सम्वत १६२६ के साल में) रामसैन्य नामक नगर की भूमि में से एक मनोहर श्रीऋषभदेव भगवान की प्रतिमा निकली हुई थी। यहां के श्रावकों ने इस प्रतिमा को इसी स्थान में एक भूमिगृह में स्थापन की थी। इस बात की प्रसिद्धि जगत में पहले ही से फैल चुकी थी।

इस तीर्थ की यात्रा करने के लिये राधनपुर का श्रीसंघ श्रीसूरीश्वर के साथ में चला। क्रमशः चलते हुए बहुत दिन व्यतीत होनेपर इस तीर्थ में वह संघ आपहुंचा। श्रीऋषभदेव भगवान के दर्शन करके सब लोग कृतकृत्य हो गए। श्रीसंघ ने भी बहुत द्रव्य का व्यय करके स्थावर-जंगम तीर्थ की अच्छी तरह भक्ति की। यहां की यात्रा करने से लोगों को अपूर्व भाव उत्पन्न हुए। फिर लौट करके सब लोग राधपुर आए। सूरीश्वर आदि मुनिवर भी उस समय वहां पधारे।

राधनपुर में सूरीश्वर के आने के बाद अनेक शुभ कार्य हुए। जिनमें ' वासणजोटा ' नामक श्रावक का बड़े उत्साह के साथ एक नए मंदिर की प्रतिष्ठा कराना, एक मुख्य कार्य था। कुछ दिन यहांपर ठहर करके फिर आप ' वड़ली ' नगर में गए। यहां श्री

विजयदानसूरि और श्रीहीरविजयसूरि के दो कीर्ति स्तंभ बड़े ही आश्चर्यकारी थे। इस कीर्ति स्तम्भके आगे प्रत्येक भाद्रशुक्ल एकादशी के दिन वटपल्ली और पत्तन नगर के लोग इकट्ठे होकरके बड़ा उत्सव करते हैं। यहां आकरके विजयसेनसूरि ने इस कीर्ति स्तम्भ के सामने गुरुवर्यों की स्तवना की। यहां से विहार करके पत्तन नगर के श्रावकों के आग्रह से आप पत्तन पधारे।

दूसरी ओर, इस पत्तननगर में विराजते हुए श्रीविजयदेवसूरि के वाग्विलास से उत्साहित होकर लुंकामत का स्वामी मुनि मेघराज (जो पहिले पहल लुंकामत को त्याग करने वाले मेघजी ऋषि का प्रशिष्य था) के मनमें अपने मतको त्याग करने की इच्छा हुई। वह श्री-विजयसेनसूरिजी के चरण कमल में आया। विजयसेनसूरिजी की देशना सुनने से इन महानुभावकी श्रद्धा और भी पक्की हुई। इसके बाद मुनि मेघराज ने लुंका मत को त्याग किया और श्रीतपागच्छरूप वृक्ष की शीतल छाया में रहने लगा। बड़े समारोह के साथ तपागच्छ में यह दीक्षित किए गये।

एक दिन इस पत्तननगर के एक 'कुमरगिरि' नामक पुर के श्रावकवर्ग ने अतीव आग्रहपूर्वक विनति की-'हे कृपालु महाराज! आप के चरणकमल से हमारा छोटा पुर पवित्र होना चाहिये।' लाभ का कारण देख करके मुनिवरों ने आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा के दिन इस पुर में प्रवेश किया। इस पुर में चातुर्मास करने से यहाँ के लोगों को धर्म कृत्य करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। पत्तननगर के लोग भी इस उपदेश का लाभ सर्वदा ले सकते थे।

चातुर्मास समाप्त होने पर श्रीसूरीश्वरजी श्रीसंखेश्वर पार्श्वनाथ की यात्रा को पधारे। पुनः श्रीसंघ के आग्रह से आपका पत्तननगर

आना हुआ । यहां पर फाल्गुण चातुर्मास रद करके आपने स्तम्भ-तीर्थ जाने के लिए प्रयाण किया ।

इस प्रकार पृथ्वी तलको पावन करते हुए चाणसमा-राजनगर-आदि की यात्रा करते हुए आपने स्तम्भतीर्थ में प्रवेश किया । आपके उपदेश से यहा के लोगों ने भी प्रतिष्ठादि बहुत से कार्य किये । श्रावकों के आग्रह से चातुर्मास की स्थिति सूरिजी ने यहाही की । चातुर्मास व्यतीत होने के बाद आपने अकबरपुर नामक शाखापुर में आकर चातुर्मास किया । तदनन्तर बिहार करके आप गन्धारपुर में पधारे ।

गन्धार बन्दर में भी आपने बहुतसी प्रतिष्ठाए की, और उपदेश द्वारा लोगों को लाभ प्रदान किया । यहां से आप विहार करके भृगुकच्छ-रानेर आदि होते हुए तापीनदी को नावसे उल्लघन करके सुरत पधारे । यहांपर भी प्रतिष्ठाए की और चातुर्मास की स्थिति समाप्त करके विहार किया । स्तम्भ तीर्थ आदि स्थानों में होते हुए श्रीविजयदेवसूरि के सहित आप श्रीसिद्धाचल जी पधारे । वहांपर उस समय स्तम्भ तीर्थ-राजनगर-पत्तन-नवीन नगर-द्वीप बन्दिर आदि नगरों से सघ आए हुए थे । इन लोगों को भी सूरिजी के उपदेश से बहुत लाभ मिला । यहां से श्रीविजयसेनसूरि जी ने द्वीप बन्दर के लोगों के आग्रह से द्वीप बन्दर की ओर प्रयाण किया और गुजरात के लोगों के आग्रह से श्रीविजयदेवसूरि को गुजरात में विचरने की आज्ञा दी ।

जिस प्रकार कस्तूरी की सुगन्धि फेलाने की कोइ आवश्यकता नहीं पड़ती । वह आपही से फैलजाती है । उसी प्रकार सूरीश्वर जी की यश-कीर्ति चारों ओर फैलगई । सौराष्ट्र देशमें विचरने से सौराष्ट्रदेश के लोग अपने २ ग्रामों में लेजाने के लिय नित्य प्रार्थना करते

ही रहते थे। सूरिजी का आना द्वीपबन्दर के पास उन्नत नगर में हुआ। उसी स्थानपर परम पूज्य-प्रातःस्मरणीय गुरु वर्य श्रीहीरविजयसूरिजी का देहान्त हुआ था। यहां आपने सबके प्रथम अपने गुरु वर्य की पादुका के दर्शन किये। और उसके बाद फिर उन्नत नगर में प्रवेश किया।

द्वीपबन्दर से 'मेघजी' नामक एक व्यवहारी और 'लाड्की' नामकी उसकी शीलवती भार्या, यह दोनों उन्नत नगर में सूरिजी के दर्शनार्थ आए। यहां आकर उन्होंने श्रीसूरीश्वर के हाथ से प्रतिष्ठा करवाई। यहांपर भी नवीन प्रतिष्ठाओं की धूम मचगई। एक 'अमूला' नामकी श्राविका ने प्रतिष्ठा करवाई। दूसरी द्वीप मन्दिर निवासी 'कालीदास' नामक श्रावक ने भी करवाई।

श्रीसंघ के आग्रह से चातुर्मास आपने यहांही किया। चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आप 'देवपत्तन' पधारे। इस नगर में अमरदत्त, विष्णु और लालजी नामक तीन बड़े धनिक रहते थे। इन तीनों ने बड़े समारोह के साथ श्रीसूरीश्वर के हाथ से तीन प्रतिष्ठाएं करवाई। यहां से विहार करके आप श्रीदेवकुल पाटक(देलवाड़ा) पधारे। यहां भी 'हीरजी' नामक श्रावक के घर में एक प्रतिष्ठा की और दूसरी 'शोभा' नामकी श्राविका के घर में।

तेरहवां प्रकरण ।

(कपितान–कलास–पादरी युक्त फरंगी समुदाय की प्रार्थना । श्रीनन्दिविजयका द्वीपमन्दिर जाना । गिरनारजी की यात्रा । स्वयं श्रीसूरीश्वर का द्वीपमन्दिर पधारना । सखेश्वर की यात्रा । ग्रामानुग्राम विचरना और अन्तिम उपसंहार) ।

जिस समय में श्री विजयसेनसूरीश्वरजी देवकुल पाटक में बिराजते थे । उस समय में द्वीप बन्दर के फिरंगी लोग, अपने कपतान (अधिकारी विशेष) कलास (अमात्य विशेष) पादरी (धर्म गुरु) इत्यादि के साथ श्रीसुरिजी के पास आकर प्रार्थना करने लगे.——

"हे गुरूत्तम ! हे निर्मल हृदय ! आप द्वीप मन्दिर पधार कर हम जैसे अन्धकार में पड़ हुए लोगों का कुछ उद्धार करिए । कदाचित आप स्वय न आसकें तो किसी एक उत्तम चेले को भेज करके हमारे हृदयों को शान्त करिये । "

इस प्रकार फिरंगी लोगों के अत्याग्रह से सुरीश्वर ने अपने नन्दिविजय नामक चमत्कारी मुनिको द्वीप बन्दर भेजा । श्रीनन्दिविजयकी कला कौशल्य और चमत्कारिक विद्याओं से लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए । लोगों ने श्रीनन्दिविजय मुनीश्वर का बहुतही सत्कार किया । आपने यहा पर तीन रोज ठहर करके व्याख्यान द्वारा जीवादि नव तत्वों का उपदश करके लोगो के अन्त करणों में बहुत ही प्रभाव डाला । श्रीसंघ के साथ तीन दिन रह कर आप पुन. गुरु महाराज के पास आगए । एक दिन आपने श्रीनेमनाथ प्रभु

की यात्रा के लिये विहार किया। साथ में द्वीप बन्दर का श्रीसंघ भी चला। बहुत दिन व्यतीत होने पर आप गिरनार जी पहुंचे। इस समय गिरनार में 'खुरम' राज्य करता था। यह राजा स्वभाव ही से साधुओं के प्रति बड़ा क्रूर स्वभाव रखताथा। किन्तु श्रीविजयसेनसूरिजी के तपस्तेज से यह भी शान्त हो गया। कहां तक कहा जाय ? । राजा ने सूरीश्वर का बड़ा ही सत्कार किया। एक दिन श्रीसंघ के साथ में सब लोग गिरि पर चढ़े और श्रीसिद्धराज जयसिंह के महामंत्री 'सज्जन श्रेष्ठी' द्वारा निर्म्माण किये हुए 'पृथिवी जय' नामक प्रासाद में बिराजमान श्री नेमीनाथ की मनोहर प्रतिमा के दर्शन करके सब लोग कृतकृत्य हुए। अनेक प्रकार से मुनियों ने भाव पूजा और संघने द्रव्यादि से पूजा की। यहां पर कुछ दिन ठहर कर सब लोग देवपत्तन आए। यहां से द्वीप बन्दिर का संघ गुरुवंदन करके स्वस्थान पर चला गया। देवपत्तनमें सूरीश्वरने दो चातुर्मास करके बड़े उत्सव के साथ दो प्रतिष्ठाएं की। इसके उपरान्त यहां से विहार करके देलवाड़े में पधारे। यहां आनेपर यह फिरंगी लोग को श्रीनन्दिविजय जी को प्रार्थना करके पहले अपने द्वीप बन्दर में ले गये थे उन्होंने यह विचार किया—'श्रीगुरु महाराज वर्तमान देवकुल पाटक में पधारे हुए हैं। तथा जिन के प्रभावसे यहां का संघ यात्रा के लिये गत वर्ष में गया था,—वह भी सकुशल पहुंच गया है। अत एव उस उपकारी महात्मा का पुनः दर्शन करना चाहिये।'

इस प्रकार विचार करके फिरंगी लोग देवकुलपाटक में आए और श्रीगुरु महाराज से प्रार्थना करने लगे:—

"हे गुरो ! इस जगत् में हितकारी कार्यों के करने में दक्ष आप ही हैं। आपही आषाढ़ के मेघ की तरह इस जगतके सम्पूर्ण

हैं। अतएव कृपया हमारे साम्राज्य में स्थित द्वीप बन्दर में आप पधारिए। और हमारे मनोरथों को पूर्ण करिये।"

इस प्रकार की अत्याग्रहपूर्ण विनति को सुन कर सूरिजी ने विचार किया कि—' फिरंगी लोगों का इतना आग्रह है। द्वीपबन्दिर के श्रीसंघ का आग्रह तो पहिले से ही है। अतएव वहां पर जाना उचित है। वहां जाने से धर्म-धनका लाभ तो अपने को होगा। और अन्य जीवों को भी बोधि प्राप्त रूप लाभ होगा। फिर इस बन्दर में अभीतक किसी आचार्य का जाना नहीं हुआ है इत्यादि बातें सोच करके श्रीविजयसेनसूरि द्वीप बन्दिर पधारे।

मार्ग में द्वीपाधिपति फिरंगी ने ' मचुआ ' नामक वाहन को भेजा और उसमें बैठ करके आप पार उतरे। गुरु महाराज के पुर प्रवेश के समय फिरंगी लोगों ने तथा श्रीसंघ ने बड़े उत्साह के साथ अवर्णनीय महोत्सव किया। नित्य व्याख्यान वाणी होने लगी। सब लोग सूरीश्वर के उपदेश रूपी अमृत से अपनी तृषाको शान्त करने लगे। एक दिन फिरंगी लोगों की मुख्य सभा में बड़ी ओर शोर से सूरीश्वर ने सत्य धर्म का प्रति प्रदान किया। अर्थात् इन्होंने यह बात सिद्ध करके दिखाया कि—यदि कोई भी मोक्षमार्ग को साधन कराने वाला धर्म है तो वह जैन धर्म ही है। लोगों के अन्तःकरण में इस बातका निश्चय होगया। समस्त लोग आश्चर्य युक्त होकर यह कहने लगे –' अहा ! सूरीश्वर जी का कैसा प्रभाव है कि फिरंगी जैसे आचार विहीन लोग भी इनके उपदेश से सतुष्ट होगए। महात्माओं के चातुर्य की क्या बात है ? " कुछ दिन रहकर देवकुल पाटक में आकर सूरीश्वर ने चातुर्मास किया।

चातुर्मास होने के पश्चात् 'नवानगर' के कितनेही अधिकारी वर्ग के अत्याग्रह से, आप ' माणराड "होते हुए नवानगर पधारे।

पद्वी धारकथे। इस पवित्र समूह में अनेक व्याकरण शास्त्र के पारगामी, कितने तर्क शास्त्रमें [illegible]ति तुल्य थे। और कितनही आशुकवि तथा व्याख्यान देने म वाचस्पति होरहे थे। गणधर-सुर वेवलीकृतसूत्र, अङ्गोपाङ्गादिमें तथा बहुत से गणितशास्त्र, ज्योतिष साहित्य, छन्दानुशासन, लिंगानुशासन, धर्मशास्त्र आदि सब विषय के जानने वाले सैकड़ों साधु श्रीसूरिजी महाराज के साम्राज्य में थे

श्रीसूरिजी महाराज के उपदेश से श्रीशत्रुञ्जय-श्रीतारंगा-श्रं विद्यानगर-श्रीराणपुर-श्रीआरासणपुर-पत्तननगर में पचासर प श्र्वनाथ-श्रीनारंगपुरीयपार्श्वनाथादि के तीर्थ का इत्यादि बहुत तीर्थोद्धार हुए। प्रतिष्ठाएं तो बहुतसी जीवन चरित्र में लिख गई हैं। श्रीसंखेश्वर ग्राम में श्रीपार्श्वनाथ का शिखरबंध मन्दि का निर्माण भी सूरीश्वर ने करवाया था।

नगर २ में स्थान२ में राजा महाराजाओं के अनुच्छ महोत्स से पूजित श्रीहीरविजयसूरि और श्रीविजयसेनसूरिके पुण्य प्रभाव इस चरित्र को पढ़ने वाले पाठकों को उत्तमोत्तम गुणों की प्रा हो, यह इच्छा करता हुआ इस पवित्र चारित्र को यहांही समाप्त करता है।

ॐ शान्ति शान्ति. शान्तिः।

सूचना

"श्रीहीरविजयसूरि, अकबर बादशाह को धर्मोपदेश दे र इस भाव की फोटु जिसको चाहिए, वह 'श्वेताम्बर ओसवार लायब्रेरी, चौक लखनऊ' इस पतेसे मगवाले। केशीनाइर फूलसाहब ।।।)